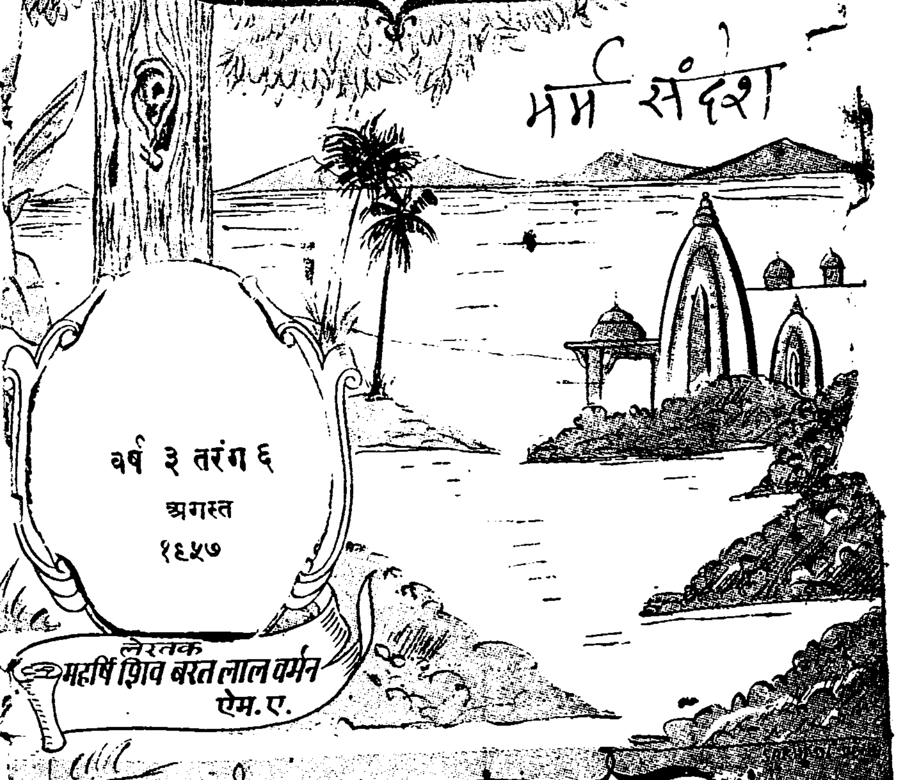

शिव

मासिक

मर्म संदेश

वर्ष ३ तरंग ६

अगस्त

१९५७

लेखक
महर्षि शिव बरत लाल वर्मन
ऐम. ए.

प्रकाशक
शिव साहित्य प्रकाशन मंडल
पो. दयाल नगर. जिला अलीगढ़ उ. प्र.

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल

१. संरक्षक—परमसंत दयाल फ़कीरचन्द जी महाराज
(१८ रेलवे मंडी, होशियारपुर)

२. प्रधान तथा सम्पादक—दयालस्वरूप नन्दू भाई जी
महाराज (निज़ामाबाद, दक्षिण)

३. उप प्रधान—श्री भजनलाल जी वकील लेखराजनगर
(अलीगढ़)

४. निरीक्षक—श्री गोपीलाल जी 'कृषक' (रिटायर्ड डाइरैक्टर
कृषि विभाग पालनपुर स्टेट)

५. स० सम्पादक—श्री देवीचरन मीतल, लेखराज नगर
(अलीगढ़)

६. मैनेजर—श्री सतप्रकाश, पोस्ट दयालनगर (अलीगढ़)
७. श्री आनन्दराव जी, हैदराबाद दक्षिण

मर्म संदेश

दातादयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज
के मर्म पूर्ण वचन

—:०:—

सम्पादक
नन्दूभाई
(निज़ामाबाद दक्षिण)

—:०:—

अ० सहायक सम्पादक
देवीचरन मीतल
लेखराजनगर, अलीगढ़

—※—

प्रथम बार सं० शाका १८७६	सर्वाधिकार सुरक्षित	मूल्य ॥)

विषय सूची

क्रम	विषय		पृष्ठ
१—प्रार्थना	....	....	३
२—भूमिका	....	....	५
३—मध्य मार्गी सदा सुखी	....	....	९
४—गुरु पूजा क्या है	....	....	१८
५—दोहे (उपदेश)	....	...	२५
६—कमला देवी	....	....	२६
७—अभय हो जाओ	....	....	३०
८—अभ्यासी के लिये आवश्यक उपदेश	....	...	३२
९—आनन्द धुन	...	....	३३
१०—शब्द (चेतावनी)	...	...	३४
११—छोटी छोटी बातें	....	...	३४
१२—शब्द (निज अवस्था)	....	...	३९
१३—शब्द (आदर्श)	...	....	४०
१४—आहार और शरीर पर उसका प्रभाव	....	....	४१
१५—काम की बातें	....	...	४५
१६—सोचने समझने की बातें	...	...	४८
१७—कर्म भोग या मौज	...	...	५३

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

R.S.

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरु साक्षात् परब्रह्मः तस्मै श्री गुरुवेनमः ॥

शिव

वर्ष ३ | शाका सं० १८७९ अगस्त ५७ | तरंग ६

प्रार्थना

साधो एक रूप सब माहीं ।
अपने मनहिं विचारि के देखो, और दूसरी नाहीं ॥टेक॥
एकै तुचा रुधिर पुनि एकै, बिप्र सूद्र के माहीं ।
कहीं नारी कहिं नर होइ बोलें, गैब पुरुष वह आहीं ॥१॥
आपै गुरु होय मंत्र देत हैं, शिष होय सबै सुनाहीं ।
जो जस गहै लहै तस मारग, तिन के सतगुरु आहीं ॥२॥
शब्द पुकार सत्त में भाषौं, अंतर राखौं नाहीं ।
कहैं कबीर ज्ञान जेहि निर्मल, बिरले ताहि लखाहीं ॥३॥

———

परमावश्यक सूचना

गत वर्ष की भांति दशहरा पर दहली में परम संत दयाल फकीर चन्द जी महाराज का सत्संग होगा। दयाल स्वरूप नन्दू भाई जी (निज़ामाबाद) इस अवसर पर पधार रहे हैं। पूर्ण प्रोग्राम आगामी अंक में प्रकाशित किया जायगा। सांसारिक, मानसिक और आत्मिक जीवन के सुधारने के जिज्ञासुओं को लाभ उठाने का बड़ा स्वर्ण अवसर है।

विनीत

स० सम्पादक

प्रेमी ग्राहकों से निवेदन

हम अपने पाठकों को बराबर याद दिलाते रहे हैं कि अभी तक बहुत से ग्राहकों का वार्षिक मूल्य प्राप्त नहीं हुआ है। यह तो आप जानते हैं कि 'शिव' के पास न तो अपनी कोई निजी पूंजी है न कोई और फंड है जिससे इसका खर्चा चलाया जा सके। यह तो केवल प्रेमी सज्जनों के लाभार्थ संतों की अनमोल वाणियों को प्रकाशित इस ध्येय से करता है कि मानव जीवन सुख शान्ति से गुजर जाय। जब याद दिलाने पर भी वार्षिक मूल्य न आयेगा तो फिर 'शिव' आपकी सेवा कैसे कर सकेगा। इसके लिये तो आप सभी सज्जनों को इसके कार्य्य में हाथ बटाना चाहिये।

अतः प्रार्थना है कि जिन भाइयों ने मूल्य अभी तक नहीं भेजा है वह तुरन्त मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें।

साथ ही यह भी प्रार्थना है कि इसके ग्राहक बनाने का भी प्रयत्न करें ताकि और भाई भी इससे लाभ उठा सकें।

विनीत

मैनेजर

भूमिका

साखी

१—कबीर ! भेदी भक्त सों, मेरा मन पतियाय ।
भक्ति-भाव जाने नहीं, ता सों मिले बलाय ॥ १ ॥
२—महरम मिले जो भेद का, तासों कहिये भेद ।
मर्म भेद जाने नहीं, तासों उपजे खेद ॥ २ ॥
३—अधिकारी सब कुछ लखे, बिन अधिकार न कोय ।
संस्कार उर में बसे, अधिकारी है सोय ॥ ३ ॥

सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक वस्तु का अधिकारी नहीं है । बिशेष मनुष्यों के विशेष अधिकार होते हैं । सृष्टि में इस नियम का व्यवहार हर जगह दिखलाई देता है । पढ़ने-लिखने, काम-काज और व्यवहार के विषय में मनुष्य के स्वभाव का ध्यान रखना आवश्यक है । जो मनुष्य जिसका ग्राहक हो वही वस्तु उसको दी जाये तो वह उसका सत्कार करेगा और जो जिसका ग्राहक ही नहीं है वह सत्कार करना तो दूर रहा फूटी आँख से भी देखना पसन्द न करेगा । संसार में देखो कोई सुगन्धि का प्रेमी है, कोई फल खाता है, कोई फूल खाता है, कोई-कोई पत्ते चबाते हैं, किसी-किसी का अहार छाल लकड़ी और हीर है । ठीक इसी प्रकार कार-बार के विषय में समझना चाहिए । जिस बात का अधिकार होगा वह उसी को पसन्द भी करेगा । अधिकार और संस्कार समयानुसार शिक्षा, उपदेश, संगत और मेल-जोल से उभर खड़े होते हैं परन्तु जो अधिकारी हैं वही इधर ध्यान देते हैं ।

तेली का काम तमोली नहीं कर सकता, जौहरी और पारखी का काम साग भाजी बेचने वाला कुँजड़ा क्या जाने ! उच्च हृदय वाले मनुष्य छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान नहीं देते। नीच स्वभाव वाले मनुष्य से भलमनसाहत का काम नहीं होता। जैसे बुरे मनुष्यों के चित्त से बुराई नहीं जाती वैसे ही अच्छे लोगों के हृदय में बुराई भी नहीं आती।

पहिले मनुष्य के अधिकार और संस्कार को देखकर तब उसी के अनुसार उसे उपदेश देना चाहिए। फिर सफलता अवश्य ही प्राप्त होगी। यदि ऐसा न किया गया तो असफलता में क्या सन्देह हो सकता है। सब धान बारह पनसेरी नहीं बिकते। बासमती चावल सूक्ष्म स्वभाव वालों का आहार है। मुंजी चावल को स्थूल स्वभाव वाले ही पसन्द करते हैं। जो जैसा है वह वैसे ही आहार की खोज में रहता है।

यही बातें ऊँचे-नीचे भावों, निर्पक्षता और हठधर्मी के विषय में भी है। उच्च भाव वाले के हृदय में नीच भाव नहीं आते। इसी प्रकार हठधर्मी और पक्षपाती मनुष्य से निष्पक्षता की आशा नहीं की जा सकती। जो जैसा है उसका व्यवहार और विचार भी वैसा ही होगा।

हमारा **शिव** भी उन्हीं सज्जनों के लिये सम्पादन किया जाता है जिन में प्रेम और भक्ति भाव का संस्कार है। जिन को भक्ति भाव में रस आता है, जो प्रेम की वेदी पर बलिदान होने के लिये बराबर तैय्यार रहते हैं, जिन्हों ने प्रेम तत्त्व को समझ लिया है केवल वही **शिव** के वचन और सत्संग से विशेष लाभ उठाते हैं। जिनमें भक्ति भाव का संस्कार ही नहीं है उनके विषय में क्या कहा जाये।

साखी

साध सिंह का एक मत, जीवत ही को खाँय
भाव-हीन मृतक दशा, तिनके निकट न जाँय ॥

अब सवाल यह है कि कोई अपना कितना समय सर्व साधारण की सेवा के लिए दे सकता है, कितना धन-द्रव्य इस काम में लगा सकता है तथा तन, मन, धन इसके लिए अर्पण कर सकता है? यदि यह गुण किसी में हैं तब यह लेखों का सिलसिला बहुत ही बहुमूल्य और लाभदायक सिद्ध होगा और यदि यह नहीं है तो—

"भैंस के आगे बीन बाजे, भैंस बैठ पगुराय"
"अन्धे के आगे रोवे, अपना दीदा खोये"

अन्धों को दरपन दिखलाना। व्यर्थ काम चित्त में लाना।
खर कूकर सी गति है तिनकी। नीच और मलिन भावना जिनकी।

इस नम्बर में इन्हीं सब विषयों के मर्म, भेद और सार इकट्ठा किये गये हैं। आशा है हमारे पाठक-गण अपने काम की बहुत सी बातें इन में से ढूँढ निकालेंगे और उन से लाभ उठाकर हमारे परिश्रम को भी सफल करेंगे।

दोहे

१. नाम रतन की खान हैं, सदा खुली घट माँह।
   सेंत मेंत ही देत हूँ, गाहक कोई नाँह ॥ १ ॥

२. गावनिया के मुख बसूँ, और श्रोता के कान।
   ज्ञानी का मैं ज्ञान हूँ, भेदी का मैं प्रान ॥ २ ॥

३. वस्तु कहीं ढूँढे कहीं, केहि विधि आवे हाथ।
   कहैं कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ ॥ ३ ॥

४. भेदी लिया साथ कर, दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पन्थ था, पल में पहुँचा जाय ॥ ४ ॥

५. वस्तु कहीं ढूँढे कहीं, भेद न पाया जान।
कहँ कबीर पावै कहाँ! नहीं मिला गुरु ज्ञान ॥ ५ ॥

६. यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तौ भी सस्ता जान ॥ ६ ॥

७. भेदी सों भेदी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय।
भेद बाद में जो पड़ा, गया भेद में खोय ॥ ७ ॥

८. घट का परदा खोलकर, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साइयाँ, आदि अन्त का यार ॥ ८ ॥

९. सैन बैन में जो लखै, तासों कहिये धाय।
सैन बैन बूझै नहीं, तासों कहै बलाय ॥ ९ ॥

१०. गाहक मिलै जो मर्म का, मर्म बताऊँ ताह।
जो मेरा मर्मी नहीं, ताहि कहूँ क्यों आह! ॥१०॥

शिवव्रतलाल

RS.

मर्म-संदेश

मध्य मार्गी सदा सुखी

"मध्य मार्गी सदा सुखी" अर्थात् बीच की राह से चलने वाला और समता का ध्यान रखने वाला सदा सुखी रहता है और उसके जीवन के आदेश की पूर्ति भी सुगमता के साथ होती है। यह सन्तों का उपदेश है। यह बौद्धों की शिक्षा है। दायें बायें से बचो। केवल बीच की राह पर चलो और गुरु की कृपा से तुम्हारा कल्याण होगा।

इसी मध्य मार्ग को सहजपन्थ कहते हैं। इसके साधन से सहज वृत्ति आती है अर्थात् सहज समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। जो इस मार्ग पर नहीं चलते उनका परिश्रम निष्फल जाता है और वह दुखी होते हुए लज्जित होते हैं।

कबीर साहिब की वाणी है:—

"सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न जानै कोय।
जा सहजे साहिब मिलैं, सहज कहावै सोय॥"

बच्चों के व्यवहार से सच्चाई और सहज अवस्था का उपदेश लो। माँ की छाती से होंठ लगे हुये हैं। दूध सहज रीति से निकल कर पेट में जाता है और उसी से बालक के शरीर का पालन-पोषण होता है। दाँत गड़ाओ, लहू निकलं

आयेगा और वह बच्चे की शारीरिक अवस्था के लिये हानिकारक होगा। बच्चा बीमार पड़ जायेगा और फिर दवा इलाज में काम लेना पड़ेगा। दूध जब मिलेगा सहज रीति से मिलेगा। खींच-तान करने से या तो रक्त निकलेगा या पानी, और दोनों ही हानिकारक होंगे।

"सहज मिले तो दूध सम, माँगा मिले सो पानी।
कहैं कबीर वह रक्त सम, जा में ऐंचातानी॥"

ऊपर पानी है। नीचे तलछट है। सार वस्तु केवल बीच में है। हंस का ढंग सीखो। इधर पानी को छोड़ो, उधर तलछट से मुँह मोड़ो और चोंच को बीच में डुबाओ। दूध दूध पी लो, पानी और तलछट को छोड़ दो।

"पानी तज तलछट तजै, चोंच दूध में लाय।
साधू हंस गती गहै, सहजहिं काम बनाय॥"

जीवन का प्रवाह सहज सहज में है। कोई जल्दी सयाना (युवा) नहीं होता। काम सहज रीति में सुगमता के साथ होना चाहिये। यदि व्यर्थ हाथ पाँव मारा जाता है तो परिणाम बुरा होगा और अन्त में लज्जित होना पड़ेगा।

"काहे को कलपत फिरै, दुखी होत बेकार।
सहजे सहजे होयगा, जो रचिया कर्तार॥"

लोक का काम हो या परलोक का, सब में समता का ध्यान रखना आवश्यक है। जो जल्द चलता है उसके थक जाने का डर रहता है जो धीरे धीरे चलता है उसके ठिकाने तक पहुंचने में खटका रहता है। सम्भव है दिन डूब जाये और वह ठिकाने तक न पहुँच सके। इसलिए काम करने के लिये समता का ध्यान रखना अति आवश्यक और लाभदायक है। इस में न खींचा तानी का डर है न निराशता का भय है। न संसार से भागो न संसार के होकर रहो। इन दोनों के बीच की राह पर चलो।

भजूं तो को है भजन को ? तजूँ तो को है आन ?
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन मान ॥

धर्म और अधर्म किसी से भी गहरा सम्बन्ध न हो। न बहुत बोलो न बहुत चुप रहो। मध्य मार्गी बनो। फिर तुम्हारा काम आप ही आप होता रहेगा।

'हिन्दू कहूँ तो हूँ नहीं, मुसलमान भी नाँह।
पाँच तत्त्व का पूतला, ग़ैबी खेले माँह ॥
अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धुप ॥"

लोग हमसे बार बार पूछते हैं कि कौन सा मार्ग ग्रहण किया जाये जिसकी सहायता से साक्षात्कार जल्द हो। हम भी उनको बार-बार यही उत्तर देते हैं कि तुम बिचली सहज राह पर चलो, इसी में भलाई है। परन्तु बहुत कम लोग इस उत्तर की समझ रखते हैं। प्रश्न यह है कि आत्मिक दृष्टि में यह सहज मार्ग क्या है ? उत्तर यह है कि वह **सुरत शब्द योग और सुरत शब्द मार्ग** है। संसार में जितने योग और साधन प्रचलित हैं वह कठिन, हानिकारक और अपूर्ण हैं। यह सहज, सुगम और पूर्ण है। हमारे यहाँ यह सारे साधन और अभ्यास का सार या इत्र समझा जाता है। मुसलमान सूफी इसे सुलतानुलअज़कार कहते हैं जिसका अर्थ है— 'ज़िक्रों का बादशाह।' यह उसकी महिमा है। कहने वाले तो बात को स्पष्ट रूप से कह गये परन्तु एक ओर साधन-हीन विद्वानों ने गूढ़ परिभाषायें गढ़ कर इसे कठिन बतलाने का यत्न किया। दूसरी ओर पक्षपाती और हठधर्मी मनुष्यों ने न्याय के गले पर छुरी चलाकर आप तो स्वयं उससे वंचित रह गये और नाना प्रकार की अनसमझियाँ

फैलाकर दूसरों को भी उससे लाभ नहीं उठाने दिया। यह सिलसिला अब तक बराबर चला आता है। केवल कोई अधिकारी ही इधर झुकता है। और लोग कोरे के कोरे रह जाते हैं। एक ओर रूखे-फीके तपस्वी तपस्या की महिमा गाते हुए मालिक के दिये हुए पदार्थों से विमुख होकर अपने मन बुद्धि और स्वभाव को रूखा-फीका बना लेते हैं और बुद्धि विवेक से कोसों दूर जा पड़ते हैं। दूसरी ओर संसारी मनुष्य हैं जो एक दम भोग-विलास में फँसकर सूक्ष्म इन्द्रियों के सुख और आनन्द को खो बैठते हैं। यह दोनों ही सच्चाई से बहुत दूर हैं। बिचली राह पर क्यों नहीं चलते जिसमें किसी प्रकार की खींच-तान नहीं है। यह शिक्षा हम को मधु की मक्खी से लेना चाहिए जो खिले हुए फूल पर बैठकर रस ले लेती है और पंखड़ियों पर अपने पाँव का धब्बा नहीं छोड़ती। गुरु की बाणी है:—

"साधू ऐसा चाहिये, जैसे सूप स्वभाय।
सार-सार को गह रहै, थोथा देइ उड़ाय॥"

सूप या छाज की तरह केवल नाज-नाज को तो फटक पछोड़ कर ले लो और भूसी को उड़ा दो। काम की वस्तु हाथ में आये बे काम को उड़ जाने दो। संसारी व्यवहार में भी ऐसा ही बर्तना चाहिए। यह असली संत मत है और यही मध्य मार्ग या बिचली राह है:—

"अवगुण को तो ना गहै, गुण ही को ले बीन।
घट-घट महकै मधुप ज्यों, परमातम ले चीन्ह॥"

दोष और बुराई को त्याग करता हुआ केवल गुण को चुनता रहे। भँवरा सुगन्ध के घड़ों पर मँडलाता हुआ उसकी बास को तो ले लेता है और तलछट को हाथ तक नहीं लगाता।

तुम भी इसी प्रकार घट-घट में जो परम तत्व व्यापक हो रहा है उसको परखो और परमात्मा को पहचानो।

"हंसा पय[1] को काढ़ ले, छीर[2] नीर निरुआर[3]।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरे पार॥"

हंस का गुण है कि दूध और पानी को अलग करके केवल दूध को पी लेता है और पानी को छोड़ देता है। इसी प्रकार जो लोग सार को ग्रहण कर लेते हैं वह सहज में भवसागर से पार हो जाते हैं। परन्तु संसारियों की चाल क्या है? वह मक्खी की तरह दुर्गन्धि को प्रिय समझते हैं। अपने आपको धार्मिक कहने वाले धर्म के नाम पर नाना प्रकार की बुराइयाँ फैलाते हैं। संसारी मनुष्य संसार के कुत्ते बनकर अपने आप को और दूसरों को भी हानि पहुँचाते हैं। जिस पन्थ या धर्म (मज़हब) में व्यर्थ खण्डन-मण्डन देखो समझलो कि इनमें विष्ठा की मक्खियों का गुण है। संतों का मार्ग (पन्थ) इन से कोसों दूर है और इनको उसकी हवा तक नहीं लगती। ऐसे लोगों के विषय में परम संत कबीर साहिब की वाणी है:--

"कबीर कीट सुगन्धि तज, नर्क गहै दिन रात।
तैसेहि मनुष असार[4] गह, गहै असारहि बात॥"

कीड़ा सुगन्ध को छोड़कर रात दिन दुर्गन्ध पर मरता है। ऐसे ही असार का ग्रहण करने वाला मनुष्य व्यर्थ बातों में अपना अमूल्य जीवन नष्ट कर देता है।

"आटा तज भूसी गहै, चलनी देख निहार।
कबीर सारहि छाँड़ि कर, करै असार अहार॥"

छन्नी (चलनी) क्या करती है? बारीक और अच्छा आटा तो छन कर नीचे गिर जाता है, केवल भूसी-भूसी उस में पड़ी

(१) दूध। (२) क्षीर=दूध। (३) अलग करके। (४) झूठ, व्यर्थ।

"रसाह छाड़ छाहा गह, काल्हू परतछ दख।
गहै असारहि सार तज, हृदय नाहिं विवेक॥"

कोल्हू क्या करता है? रस को निथार कर नीचे बहा देता है और आप गन्ने की सूखी छोही को रख लेता है। इसी प्रकार, जो लोग ज्ञान-हीन और अविवेकी हैं, उनकी दृष्टि तत्त्व पर नहीं रहती। वह असार (तलछट) ही पर जान देते हैं।

यह बातें तो हो चुकीं परन्तु प्रश्न का एक अङ्ग ज्यों का त्यों रह गया। यह **सहज योग** कैसे किया जाता है? और इसे मध्य मार्ग का नाम क्यों दिया गया? इसके उत्तर में संक्षेप रीति से केवल इतना ही कहने की आवश्यकता है कि नदी के दोनों किनारों पर कीचड़ और कूड़ा-करकट रहता है, ठंडा और सुथरा पानी केवल बीच में दिखलाई देता है। इस भव-सागर के दो किनारे हैं—एक **लोक** दूसरा **परलोक**। या तुम यों कहो—एक ओर शरीर के सुख देने का ध्यान और दूसरी ओर शरीर को कष्ट पहुँचाने का विचार। यह दोनों ही व्यर्थ हैं। मध्य मार्ग में न शरीर को बहुत सुख मिलेगा और न उसे बहुत दुख उठाना पड़ेगा। दोनों का सार तत्व हाथ में रहेगा। **इंगला पिंगला** को छोड़कर **सुषुम्णा** में चलना होगा। यह तीनों शब्द योग विद्या के सम्बन्ध में बहुत ही प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। इतना ही नहीं साधन के समय इनसे काम भी लेना पड़ता है और जब तक सुरत (रूह) को मध्य मार्ग में ठहरा कर चक्रों को वेधते हुये आगे बढ़ने की इच्छा नहीं होती, तब तक आत्मिक उन्नति के दृश्य भी आँखों के सामने नहीं आते। प्रश्न के एक अङ्ग का उत्तर तो यह हुआ। दूसरा

अङ्ग यह है कि यह सहज योग कैसा है? इसका भी उत्तर सुन लो। इसमें न किसी प्रकार का बन्धन है न परिश्रम और न व्यर्थ बात का बतंगड़ा बनाया जाता है। न यहाँ तीर्थ है न व्रत है। अपने घट में सुगमता के साथ बैठकर मालिक का नाम जपना पड़ता है। कर्म-धर्म में तो फिर भी बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं – रोज़ा निमाज़ का बन्धन, पूजा-पाठ यम-नियम और तीर्थ व्रत के रगड़े-झगड़े, नियत समय का ध्यान रखना, सामग्री को एकत्रित करना इत्यादि इत्यादि। इस योग के साधन में इनकी कठिनाई नहीं सताती। नाम लेने में कौन सा परिश्रम करना पड़ता है? क्या नाम का जाप भी दुख का कारण होता है? नहीं! कभी नहीं!! इसे साधारण मनुष्य भी समझ सकता है। फिर इस नाम लेने में जिह्वा तक हिलानी नहीं पड़ती। जो कुछ होता है आप ही होता रहता है। केवल ध्यान देने की देर है। ध्यान देते ही साक्षात्कार होने लगता है। इसीलिये इसका नाम सहजयोग है। गुरु की बाणी है:—

"सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माँहि।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाँहि॥"

अपने अन्तर में आप ही आप धुनि (ध्वनि) हो रही है सुरत (रूह) को शब्द (आवाज) के साथ मिला दो। जिह्वा तक हिलाने की आवश्यकता नहीं रही।

अन्तर का शब्द बहुत ही रसीला होता है। वह आप ही आप सुरत को अपनी ओर खींचे रखता है। इसलिये उसकी ओर ध्यान देने में भी कोई कष्ट नहीं होता। शब्द में बहुत बड़ी आकर्षण शक्ति है जिसे सर्वसाधारण तक जानते हैं। बीण (बीन बाजा) और सितार के बजते ही मन आप उसकी ओर खिंच जाता है। जब संसार के बाजों की यह दशा है तो फिर

बताओ अन्तर का शब्द कैसा बलवान और आकर्षण करने वाला होगा ! हाँ, ध्यान देने की देर है। ज्यों ही चित्त लगने लगेगा, एकाग्रता आप आती जायेगी और एकाग्रता का सच्चा आनन्द भी प्राप्त होने लगेगा। क्या इसके भी बताने और समझाने की आवश्यकता है ? यह तो मनुष्य के निज अनुभव की बात है। इस **सहज योग** में बस इतना ही करना पड़ता है। इसी को सच्चे नाम का सच्चा सुमिरन कहा जाता है और कलियुग का धर्म भी इतना ही बताया गया है। **रामायण** के ग्रन्थ-कार गोस्वामी **तुलसीदास** जी महाराज की पवित्र वाणी है:—

"ध्यान प्रथम युग मख युग दूजे।
द्वापर परितोषित प्रभु पूजे॥
कलि केवल यक नाम अधारा।
वेद पुराण संत मत सारा॥

सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ हवन, द्वापर में मूर्ति पूजा और कलियुग में केवल नाम का आधार है। यह वेद पुराण और संत मत का सार है।

यह नाम वास्तव में वही है जिसका वर्णन हम ऊपर से करते आ रहे हैं। असली नाम धुन (ध्वनि) है जो हमारे अंतर में गूँज रही है। भेद केवल इतना है कि औरों ने परदा देकर केवल सच्चे अधिकारियों को उसका उपदेश दिया और हम खुल्लम-खुल्ला स्पष्ट शब्दों में उसकी व्याख्या कर देते हैं मानना न मानना उनका काम है। इसी को **नाम योग** भी कहा जा सकता है। इसका दूसरा नाम **अनहद योग** भी है। अब यदि लोग नाम लेने, **नाम योग** के साधन करने और इस धुनात्मक नाम के जपने से घबराते और कतराते हैं तो फिर हम क्या करें ? और कोई क्या करे ? युक्ति सहज और साधारण

है। स्त्री-पुरुष बच्चे बूढ़े आप करके देख सकते हैं। इस पर भी कोई न समझे तो कहना पड़ता है कि वह काल-कर्म के चक्कर में है।

इस अनहद शब्द के अभ्यास से क्या लाभ होता है? इसका उत्तर हम संसार के सारे धर्मों के सद्ग्रन्थों से दे सकते हैं। जिसका जी चाहे हमसे पूछ सकता है। यहाँ हम आपको केवल गुरु वाणी सुनाते हैं। आप ध्यान के साथ सुनिये:—

१. गगन मंडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोर।
शब्द अनाहद होत है, सुरत लगी तहाँ मोर॥ १॥
२. कबीर! कमल प्रकाशिया, ऊगा[1] निर्मल सूर[2]।
रैन अँधेरी मिट गई, बाजे अनहद तूर॥ २॥
३. निझर झरै अनहद बजै, तब उपजै ब्रह्म ज्ञान।
अवगति अंतर प्रगटई, लगा प्रेम निज ध्यान॥ ३॥
४. सुन्न मंडल में घर किया, बाजै शब्द रसाल[3]।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल॥ ४॥
५. कबीर! शब्द शरीर में, बिन गुन[4] बाजै ताँत।
बाहर भीतर रम रहा, ताते छूटे भ्रान्त॥ ५॥
६. शब्द शब्द बहु अन्तरा[5], सार शब्द चित दे।
जा शब्दे साहिब मिलें, सोइ शब्द गह ले॥ ६॥
७. शब्द शब्द सब कोइ कहै, वह तो शब्द विदेह[6]।
जिह्वा पर आवै नहीं, निरख परख कर लेह॥ ७॥
८. शब्द बिना सुरत आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय॥ ८॥
९. कस्तूरी नाभी बसै, मृग ढूँढ़ै बन माँहि।
ऐसे शब्द घट में बसै, दुनिया जानै नाँहि॥ ९॥

(१) निकला। (२) सूर्य। (३) रसीला। (४) रस्सी। (५) भेद। (६) बिना शरीर का।

इन दोहों की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। इनसे शब्द अभ्यास के लाभ का पता लगता है। यही **शब्द योग** आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने का मध्य मार्ग है। जो चाहें वह इसकी कमाई करें। जो नहीं चाहते उनसे क्या कहा जाये! हमने बहुत ही खोल खोलकर स्पष्ट रूप से व्याख्या कर दी। साधन भी इतना सहज और सुगम कर दिया गया कि अधिकारी थोड़े ही दिन के अभ्यास से लाभ उठाने लग जाता है। जिनको अभ्यास करते हुये बहुत दिन होगये और कुछ लाभ नहीं पहुँचा उनके विषय में समझ लो कि इन्होंने किसी से पूरा भेद नहीं लिया और न सतसंग किया नहीं तो यहाँ तिल की ओट पहाड़ है। इस से अधिक और क्या कहा जाये! समझ हो तो तुम समझ-बूझ कर इससे लाभ उठाओ और इस बिचली राह से चलते हुये इसी जन्म में अपना काम बना लो। आगे मालिक जाने क्या हो! अवसर से लाभ उठाना बुद्धिमानों का काम है।

१. काल करै सो आज कर, आज है तेरे साथ।
काल काल तू क्या करे, काल है काल के हाथ ॥ १ ॥
२. काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करेगा कब ॥ २ ॥

गुरु पूजा क्या है ?

प्रश्न—राधास्वामी मत की शिक्षा बहुत ऊँची है मगर इसमें मूर्ति पूजा क्यों कराई जाती है। क्या गुरु की पूजा मूर्ति पूजा नहीं है? यदि यह वास्तव में आध्यात्मिक मार्ग है तो इसमें सिद्धान्त पर चलने की शिक्षा होनी चाहिए।

उत्तर—राधास्वामी मत में मूर्त्ति-पूजा नहीं कराई जाती और न गुरु भक्ति मूर्त्ति-पूजा है, किन्तु राधास्वामी मत का नाम ही सिद्धान्त की पूजा है, बशर्ते कि कोई व्यक्ति उसे अच्छी तरह समझ ले। गुरुभक्ति नाम है गुरु के साथ एक अङ्ग (एक भाव) होने तथा, अनुकूल और एकता प्राप्त करने का। इसको तुम एक मानी में हम्दर्दी (सहानुभूति) कह सकते हो। प्रथम तो यह समझलो कि गुरु किस को कहते हैं ? जिसने सिद्धान्त की कमाई की हो अथवा वह मूर्त्तिमान जगत में साक्षात सिद्धान्त है, वह गुरु है। जो व्यक्ति जिस वस्तु की कमाई करता है वह वस्तु एड़ी से लेकर चोटी तक उसमें व्यापक रहती है। उसके भाव व विचार वैसे ही होते हैं, जैसा कि नियम है। उस सिन्द्धान्त के सार या इत्र को ग्रहण करने के लिये इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि कमाई करने वाला व्यक्ति कमाई किये हुये के साथ या साक्षात कमाई के साथ प्रेम और सहानुभूति करे। इस प्रेम और सहानुभूति का नाम गुरु भक्ति है। जब तक उसके साथ अनुकूलता, एकता और एकांगपना न होगा तब तक उसके भाव ज्यों के त्यों अन्तःकरण पर प्रभावित और प्रतिबिम्बित न होंगे और सिद्धान्त के ग्रहण करने का ज्यों का त्यों लाभ न होगा। इसलिये गुरुभक्ति अध्यात्म प्राप्त करने और आध्यात्म के नाम पर चढ़ने की प्रथम सीढ़ी है।

प्रश्न—सिवाय आपके और कोई व्यक्ति इस प्रकार गुरु-भक्ति की व्याख्या नहीं करता। यह व्याख्या साइंटिफिक और चिकित्सा शास्त्र पर निर्धारित है मगर और जगह तो मत्था टेकने, हार चढ़ाने और प्रशादी लेने ही पर जोर दिया जाता है जिसको प्रायः लोग पसंद नहीं करते।

उत्तर—साधारण बुद्धि वाले इसके अतिरिक्त और क्या

समझ सकते हैं। वह सिवाय भौतिक पदार्थ की पूजा के और ख्याल भी क्या कर सकते हैं। मगर जिनका हृदय विस्तृत, बुद्धि सूक्ष्म और विचार उच्च है वह इन्हीं बातों को दूसरे रूप से कर सकते हैं। अभिप्राय तो केवल मन लगाने और मनसे गहरा सम्बन्ध उत्पन्न करने से है। ध्यान, संकल्प, एकाग्रता और केन्द्र से लगाव—यही काम देते हैं। वह यदि इनको पसन्द नहीं करते तो आदर के साथ प्रेम तो उत्पन्न कर सकते हैं ताकि गुरु की आकर्षण शक्ति और उनका आंतरिक प्रभाव इनमें प्रवेश हो जाय। इसके बिना असली काम नहीं हो सकता। इसलिए गुरु की भक्ति पर इतना जोर दिया जाता है। तुम दुनिया में यदि किसी को कुछ दो, कुछ समझाओ, कुछ ग्रहण करो तो प्रेम और आदर के साथ करो, यहाँ तक कि यदि भोजन सामने आवे तो शुद्धता और प्रसन्नचित्त होकर उसे ग्रहण करो। यह भोजन का आदर और उसकी पूजा है। इसी प्रकार अन्य प्रकार की पूजाओं को भी समझ लो। मकान की पूजा उसको साफ सुथरा रखना और एक प्रसन्नता देने वाली दशा में उसको कायम रखना है।

सिद्धान्त की समझ प्रत्येक आदमी को नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति हर बात को अपनी ही बुद्धि के अनुसार समझता है। जो जैसा है वैसा ही अमल करेगा। तुमको केवल सिद्धान्त को समझ कर सिद्धान्त की पूजा के नुक्ते को समझ लेना चाहिये। वास्तविक ध्येय तो अनुकूलता, एकता और प्रेम पैदा करना है और वही साहस को ऊँचा करने का प्रबन्ध करता है। तुम इस प्रकार गुरु के स्वरूप (जात) को स्वीकार करो और गुरु पूजा को दिल दो।

प्रश्न—आप जिस प्रकार हर विषय की व्याख्या करते हैं

वैसा अन्य राधास्वामी सतसंगों में नहीं होता। वहाँ तो केवल पुस्तकों का पाठ कर छोड़ा या छोटे-मोटे एक-आध वचन सुना दिये जाते हैं। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हमको परम पुरुष (हुज़ूर महाराज) ने विशेष प्रकार की आध्यात्मिक शिक्षा दी है और यह भली प्रकार हृद-यांगम कर दिया है कि राधास्वामी मत सर्वमत रक्षक है। इससे सब सम्प्रदायों के गूढ़ विषयों के हल करने की कुञ्जी हाथ आती है। इस कारण से हमारा ढंग औरों से भिन्न है। सूफी, वेदान्ती, बौद्ध, जैनी, ईसाई, मुसलमान अथवा हिन्दू कोई भी आवे हम किसी की ज़बान बन्द नहीं करते, न किसी का प्रश्न सुनकर नाराज़ होते हैं बल्कि उसी के दृष्टिकोण से उसको सार वस्तु और राधास्वामी मत की असलियत समझा देते हैं। जब गुरु ने विशेष दृष्टि प्रदान की तो हम उसी दृष्टि से सब को देखने के अभ्यस्त हो गये। हम किसी की जबान क्यों बन्द करें ? सवाल को यदि तुमने एक बार दबा दिया तो क्या हुआ, वह फिर बार-बार पैदा होगा। वह तो सदा के लिये उगने वाली वस्तु नहीं है। इसलिए सब को अवसर दो कि वह दिल खोलकर अपनी शंकाओं को निवारण करलें ताकि फिर सुगमता के साथ कमाई में लग जाँय। जबान किसी की भी बन्द न करो। यदि राधास्वामी मत सच्चा है तो फिर भय किस बात का है। जिसका जी चाहे वह अपनी शंकाओं का निवारण करले।

प्रश्न—आप नियमित रूप से सत्संग क्यों नहीं कराते और लोगों को अपनी ओर आकर्षित क्यों नहीं होने देते ताकि राधास्वामी मत का प्रचार और अधिक हो ?

उत्तर—आजकल राधास्वामी मत में गलत फहमियां फैल गई हैं। अन्य जगह भिन्नता या भेदभाव की बाढ़ आ गई है।

काल की सृष्टि में ऐसा हुआ ही करता है। मैं केवल अपने लेखों से उनके दूर करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। यह भी तो आवश्यक है। मैं व्यर्थ में क्यों अलग टोली बनाकर अधिक पृथकता बढ़ाऊँ। कुदरत ने हुजूर की मौज से यह काम मुझको दे रक्खा है और मैं उसी में लगा हुआ हूँ। मेरे लेख दूर-दूर के सत्संगियों को आध्यात्मिक सिद्धान्त समझाने में सहायक हो रहे हैं और धीरे-धीरे गलत फहामियाँ (भ्रम मूलक बातें) दूर होती जा रही हैं। यह भी एक प्रकार का सत्संग का लाभ पहुँचा रहे हैं। "एक सिर और हजार सौदा" का ढंग ठीक नहीं है। काम तो हुजूर की मौज ही कर रही है। मैं सब का सम्मान करता हुआ केवल लेखों से ही सम्बन्ध रखता हूं।

प्रश्न—आज-कल प्रायः लोगों की ज़बान पर यह रहता है कि भक्ति सतगुरु वक्त की करनी चाहिए या पुराने आदि गुरु की ?

उत्तर—उनसे यह पूछना चाहिए कि प्रकाश जलते हुए चिराग़ से मिलता है या बुझे हुए या गुप्त चिराग़ से। गुरु तो अन्धेरा दूर करने वाले व्यक्ति को कहते हैं और वह वास्तविक अर्थों में ज्ञान का प्रकाश है। जब चिराग़ प्रकाशित होता है तब ही पंतगे उस पर प्राण देने को चले आते हैं। जब गुलाब खिलता है तब भौंरे उसके इर्द-गिर्द मंडलाने लगते हैं। ज्ञान के प्रेमियों के लिये वक्त के गुरु की आवश्यकता है।

प्रश्न—वक्त का गुरु एक हो या दस बीस !

उत्तर—सिद्धान्त तो एक है। दृष्टि को एकत्वदर्शी बनाना है। इसी कारण से यदि आध्यात्मिक सम्बन्धों में बहुतायत होगी तो वह एकत्व के संस्कार पैदा कराने में कठिनाई पैदा करेंगे। जिसने एक का पल्ला पकड़ा वह दूसरों की ओर कम

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

आकर्षित होगा। जिसने एक से अधिक से सम्बन्ध पैदा कर लिया वह सम्भव है तीसरे चौथे और पाँचवें की ओर भी झुके, पात्र में पूर्ण रूपेण एक वस्तु और एक ही वस्तु का ख्याल होना चाहिए। जहाँ दो-चार, दस-बीस वस्तुयें होंगी वहाँ भेद भाव की सूरत पैदा होने का भय लगा रहेगा। इसी कारण से बार-बार कहा जाता है कि पहिले समझ-बूझ लो, तब गुरु करो ताकि यह कठिनाई फिर रुकावट न डालने पावे।

प्रश्न--पंथ की दृष्टि से एक गुरु ने चोला बदल दिया। दूसरा उसके स्थान पर विराजमान हुआ। ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिए?

उत्तर--आचार्य की दृष्टि से उसका मान सम्मान करो। उसके सतसंग से लाभ उठाओ। अगर आंतरिक स्थान तय हो गये हैं तो ध्यान तो उसी गुरु का रहेगा जिसने चिताया है। दूसरे की दिल में गुंजायश कब होगी।

प्रश्न—जिस व्यक्ति ने आचार्य पदवी को ग्रहण किया है उसके कुछ गुण वर्णन कीजिये।

उत्तर—(१) वहाँ यह देखना है कि आया वह अपने जीवन में गुरु मुख बना या नहीं। गुरु मुख वह है जो केवल एक ही गुरु से लाभान्वित हुआ है। यदि उसने कई गुरुओं से दीक्षा ली है तो उसमें गुरुमुखता नहीं आई और वह आचार्य पद के योग्य नहीं है। और उसके शिष्य और शिक्षार्थियों में भी ख्याली तौर पर हर समय परिवर्तन होते रहेंगे और उनमें कठिनाई से गुरुमुखता आयेगी।

(२) जो सच्चा आचार्य होगा वह किसी की निन्दा न करेगा और न दूसरों को बुरा भला कह कर अपनी भक्ति करने

पर जोर देगा। यह रूहानी मार्ग है। इसमें निन्दा की आवश्यकता नहीं है।

(३) यह देखना चाहिए कि वह अपने चेलों की कमाई का अनुचित लाभ तो नहीं उठाता। यदि यह बात है तो दूर रहना अच्छा है। आचार्य में मन का संयम, हक हलाल की कमाई और नियमित रूप से अमली जीवन का होना अनिवार्य्य है ताकि उसका रूहानी प्रभाव औरों पर पड़े। जब वह घट का हाल सुनाने लगता है मन और सुरत स्वयं गगन मंडल का ओर दौड़ने लगती है।

(४) यह देखना चाहिये कि वह चेला बनाने के लालच और धुन में तो नहीं पड़ा है। दुकानदारी से ज्ञान मार्ग बड़ी दूर है। भिन्नता या भेद-भाव पैदा करना महात्मा के सिद्धान्त के प्रतिकूल है। यह एकत्वाद का विषय है। योग या मिलाप इसका ध्येय है।

(५) यह सम्बन्ध में असम्बन्धित और असम्बन्ध में सम्बन्धित रहता है और अध्यात्मिक सिद्धान्त का ज्ञाता और उन पर चलने वाला होता है।

प्रश्न—सत्संग एक का करना चाहिए या दस बीस का ?

उत्तर—यदि किसी एक की संगत से सत् का स्वरूप दिखाई दे गया है तो मनुष्य उसके संग को कब त्यागन करने लगा। यदि समय की परस्थितियों के आधीन एक स्थान पर बने रहने की सूरत सम्भव न हो तो किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग में सम्मिलित होने में कभी कोई हानि नहीं है। अन्तःकरण के भावों को गति देने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक बात है। कोई सत पुरुष कभी किसी दशा में यह न कहेगा कि तुम पहले इष्ट को छोड़ कर मेरा इष्ट हृदय में स्थापित करो। प्रायः सच्चे गुरु

आदेश भी कर देते हैं कि तुम अमुक व्यक्ति की संगत में बैठ कर लाभ उठाओ।

प्रश्न——एक समय में एक संत सत्गुरु होगा या कई कई ?

उत्तर—एक ही होगा। जिसने जिससे विश्वास के साथ शिक्षा पाई है वही उस समय का गुरु हो चुका। जिसको जिसके साथ प्रेम प्रीति हो वही उसका गुरु है।

प्रश्न—क्या अच्छा होता कि सबका एक ही गुरु और एक ही आचार्य होता ?

उत्तर—निस्संदेह ! इसके अच्छे होने में संशय किसको होता मगर दुनियां में स्वभावों में भिन्नता है। इस झगड़े में पड़ने से सिवाय आत्मिक हानि के और कोई लाभ नहीं है। काम से काम रक्खो। जब कोई शक्तिशाली संत प्रगट होगा तब स्वयं ऐसा हो जायगा। इस बीच की दशा में प्रथम सत्संगियों को अपने गुरु के ख्याल को पक्का करना चाहिए। जो नये सत्संगी होने वाले हैं उनको जहाँ अवसर मिले किसी सत्पुरुष से आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करें। व्यर्थ के भ्रम में न पड़ें अन्यथा जीवन अकार्थ जायगा ; किसी स्वार्थी के चक्र में फँसने से अध्यात्म से बंचित रह जायेंगे।

दोहे (उपदेश)

१. नर शरीर को पाय कर, कर नर का व्यवहार।
समता चित में धार ले, सत् पथ में पग धार ॥ १ ॥

२. जो तू फूल गुलाब का, हँस मुखता धर चित।
रंग बास दे जगत् को, पर उपकार के हित ॥ २ ॥

३. जो तू वृक्ष समान है, सहकर धूप और मेंह।

पन्थी को छाया सघन[1], फूल पात फल देह ॥ ३ ॥
४. जो तू गंग तरंग है, धो औरों का मैल।
सीतलता[2] का दान दे, चलै जो तेरे गैल ॥ ४ ॥
५. जो तू हंस सरूप है क्षीर नीर बिलगाय।
त्याग नीर गह क्षीर को, हंस का यही स्वभाय[3] ॥ ५ ॥
६. जो तू कमल का फूल है, रह जल जल उतराय।
धन सम्पत कुल पाय कर, मत मन में इतराय ॥ ६ ॥
७. जो तू गुरु का भक्त है, भक्ती में चित राख।
ध्यान और का त्याग कर, गह गुरु भक्ति की साख ॥ ७ ॥
८. नन्दू पन्थ में आय कर, पाल प्रेम की रीति।
नदी नाव संयोग लख, सब के संग कर प्रीति ॥ ८ ॥
९. जो तू सीप है स्वाँति का, ज्ञान बूंद गह ले।
मोती झलकै हृदय में, सोभा सागर दे ॥ ९ ॥
१०. मलयागिर चन्दन बना, बास सुबास से बास।
काटै आवै कुल्हाड़ जो, मुख कर बास सुबास ॥ १० ॥
११. राधास्वामी आदि गुरु, आय चिताया तोह।
उनकी समझ चितावनी, त्याग मान मद मोह ॥ ११ ॥

कमला देवी

इस देवी के धैर्य्य को नमस्कार है

अकबर के समय में आगरा सारे संसार में बहुत ही बड़ा शहर समझा जाता था। हर देश के लोग वहाँ रहते थे। कोई व्यौपार के लिये आता था, कोई नौकरी चाकरी के लिये। कोई अपनी पाँडित्य से लाभ उठाने के लिये आ निकलता था।

१—घनी २—ठंडक ३—स्वभाव

अनेक प्रकार के गुणी दूर दूर से आते और अपना गुण दिखाकर लाभ उठाते थे। अकबर सब की आशा को पूरी करता था। यही कारण था कि वहाँ बहुत से लोग बसते थे और आठों पहर चहल पहल रहती थी।

आगरे में यमुना के किनारे पाँच दस राजपूत बैठे हुये गपशप कर रहे थे। यह नित्य ही सन्ध्या समय अपने कामों से छुट्टी पाकर वहां आते थे और बारह बजे रात तक बात चीत में जी बहलाया करते थे। यह लोग अपनी अपनी बारी पर नित्य ही नई नई कहानी सुनाया करते थे। कहानी कहनी आवश्यक थी। जो कहानी नहीं कहता था उसे जुरमाना देना पड़ता था।

संयोग वश एक राजपूत को कहानी नहीं आती थी। उसे आगरे आये अभी थोड़े ही दिन हुये थे और किसी प्रयोजन से वह इनके साथ मिल गया था। इस जत्था का सरदार कपूर सिंह था जो शाही फौज का एक बड़ा अफ़सर था। इसने उस नये आये हुए राजपूत से कहा, "भाई शार्दूलसिंह? आज तुम्हारी बारी है। अच्छी कहानी सुनाना।" उसने कहा—"मुझे कहानी नहीं आती।" इस पर सारे राजपूत हँस पड़े, "वाह शार्दूल! वाह !! तू इतनी दूर दूर सैर करता है और तुझे कहानी नहीं आती। यह कभी नहीं हो सकता। कहानी कहनी पड़ेगी नहीं तो जुरमाना देना होगा।" वह हँस कर बोला, "मेरा जुरमाना ठाकुर कपूरसिंह देंगे।" उसने कहा "मैं जुरमाना न दूँगा। कहानी तुम्हें अवश्य कहनी पड़ेगी!"

शार्दूल सिंह मुस्कराया, "मैं तुम्हें एक विचित्र कहानी सुनाता हूँ। यदि सच्ची न हो तो जो चाहो मुझे दंड दो। तुम सुनकर चकित होगे। कहानी यों है: —

ग्वालियर में रामपुर एक गाँव है। उस गाँव में प्रेमसिंह

एक राजपूत रहता है। उसकी लड़की कमला देवी बड़ी ही रूपवती और सुन्दर है। आज बीस वर्ष हुये कि प्रेमसिंह ने इस लड़की का विवाह एक राजपूत से करना चाहा था। विवाह होते होते रह गया। वह राजपूत बहाना करके अपने घर से भाग गया और कहीं नौकरी कर ली। कुछ दिनों तक वह कमला को बराबर याद करता रहा। फिर वह इस प्रकार भोग-विलास में फँस गया कि उसे एक दम भूल ही गया। इस बीच में कई राजपूतों ने उस देवी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की, यहाँ तक कि एक राजा के लड़के ने विवाह के लिये उसके बाप के पास सन्देश भेजा। प्रेमसिंह ने चाहा कि वह किसी को अपनी लड़की ब्याह दे परन्तु कमला कहती है "मेरा विवाह हो गया और उस पुरुष के साथ हुआ है जो मेरे साथ मँगनी कर गया है।" वह शान्त चित्त और प्रसन्न रहती है। वह १५ वर्ष की थी जब उसकी मँगनी हुई थी। मँगनी हुए बीस वर्ष होगये परन्तु लड़की वैसी ही रूपवती है। मुझे उसे देखने की इच्छा हुई। मैं रामपुर गया। कुछ दिनों तक प्रेमसिंह के घर रहा और बहुत कुछ यत्न किया कि कमला का विवाह मेरे साथ हो जाये। माँ बाप सब तैयार थे परन्तु लड़की नहीं मानती थी। एक दिन अवसर पाकर मैंने स्वयं कमला से बात-चीत की। वह मुस्करा कर बोली—कुँवरजी राजपूतनी के साथ ऐसी बातचीत नहीं करते। तुम जानते हो कि मेरा पति परदेश गया है। वह आयेगा और मुझे ढूँढ़ेगा। मैं उसका नाम लेकर बैठी हूं।" मैंने पूछा, "यदि वह न आये तो तुम क्या करोगी?" उसने उत्तर दिया, "कुँवरजी! यह तुम्हारे कहने की बात है? वह क्यों न आयेंगे? आयेंगे और अवश्य आयेंगे। बीस वर्ष में नहीं आये चालीस वर्ष में आयेंगे। चालीस वर्ष में नहीं आये सौ वर्ष में आयेंगे। इस जन्म में भी न आये तो अगले जन्म

में आयेंगे। मैं निराश तो नहीं हूँ। जिसकी माया उसके साथ! कब तक कोई अपना माल छोड़ रक्खेगा? मुझको पूरा-पूरा विश्वास है कि वह अवश्य दर्शन देंगे। मैं रानी बनना नहीं चाहती। मैं एक सिपाही की स्त्री बनूँगी और वही मेरे लिये सब कुछ है।" यह सुनकर मेरी आँखों में आँसू भर आये और मैंने कहा, आज से तू मेरी बहन है। मैं जहाँ तक हो सकेगा तेरे पति का पता लगाऊँगा।"

"कई महीने हुए मैंने ग्वालियर छोड़ा। मैं ग्वालियर का राजकुमार सचेतसिंह हूँ। भेष बदलकर यहाँ आया। बड़ी कठिनाई से मुझे कमला के पति का पता लगा। मैंने देखा है कमला तो नहीं बदली है परन्तु उसके पति का रूप रङ्ग एक दम बदल गया है। इसमें संदेह नहीं कि वह कुँआरा है परन्तु बाल उजले हो गये हैं। सब लोग राजपूत हो। कहो! उस लड़की को क्या समझते हो?" एक के अतिरिक्त सब ने कहा, "वह सच्ची देवी है और वह राजपूत जिसने इस देवी को दुखी कर रक्खा है मनुष्य नहीं, किन्तु राक्षस है। राक्षस में भी दया होती है। यह तो उससे भी बढ़कर है।" वह एक राजपूत जो चुप था और कुछ उत्तर न दे सका था अपना मुँह छुपाये हुए रो रहा था उसने कहा, "भाइयो! वह राक्षस और पिशाच मैं ही हूँ। वास्तव में कपूर सिंह महा पतित और अधम है।"

राजपूतों ने राजकुमार को नमस्कार किया। कपूर सिंह उठा और बिना किसीसे कहे सुने आधी रात के समय घोड़े पर सवार होकर ग्वालियर की ओर चल निकला, पीछे-पीछे राजकुमार भी था।

कई दिनों पीछे यह एक नाले के पास पहुँचे। एक ३५ वर्ष की स्त्री नहा रही थी और साथ ही प्रेम के साथ गाती भी जाती थी:—

"सखी ! क्यों सोच करे ? घर आवेगा प्रीतम प्यारा।"

घोड़े की टाप सुनकर वह सर उठाकर देखने लगी। इतने में एक राजपूत घोड़े से नीचे उतरा और स्त्री के पास जा कर कहने लगा, "बहिन ! मैं कपूरसिंह को ढूँढ़ लाया। देख वह आ गया है।" इतना सुनना था कि वह मुस्कराई, "मैं जानती थी की वह अवश्य आयेंगे।" कहते-कहते उसकी घिग्घी बँध गई और वह अचेत होकर गिर पड़ी। आगे क्या हुआ पाठक-गण आप समझ सकते हैं। कहने सुनने की बात नहीं है। लोग उसको घर उठा ले गये और कमला कपूरसिंह के साथ ब्याही गई।

क्या तुम इस देवी के धैर्य्य की प्रशंसा न करोगे ?

अभय हो जाओ

कुछ अन्धेरा था। आकाश मंडल पर बादल छा गये थे। पास की वस्तु भी नहीं दिखलाई देती थी। मन में भ्रम हुआ कि सामने कौन है ? मैंने पूछा "कौन है ?" कोई हो तो बोले। एक बार, दो बार, तीन बार पुकारा। उत्तर कुछ भी नहीं मिला। रोंगटे खड़े हो गये शरीर काँपने लगा। न ठहर सकते हैं न लौट सकते हैं। आगे बढ़ना आवश्यक है। कलेजे को कड़ा किया और उछल कर उस कल्पित वस्तु को अपनी छड़ी से मारना चाहा परन्तु वहाँ क्या था ? भ्रम ही भ्रम था। भ्रम जाता रहा। इतने में बादल भी हट गये। चाँद चमकने लगा वहाँ न कोई मनुष्य था न पशु। मैं ही अकेला था। मन में हँसा, "वाह रे मन ! तू ने कैसा डराया था ? यहाँ तो कुछ भी नहीं था और तू ने भ्रम की मूर्ति सामने खड़ी कर दी। हाथ पाँव फूल गये, घिग्घी बँध गई। रोंगटे खड़े हैं शरीर कँप रहा है परन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं। मेरे अतिरिक्त वहाँ कोई भी नहीं !"

पापी मनुष्य के मन की यही दशा होती है। मनुष्य के हृदय में पाप का ध्यान आया नहीं कि वह डरा नहीं। पाप अन्धकार है। पाप बुराई है। पाप अज्ञान है। हम पाप क्यों करें? मरना हो अभी बिजली सर पर गिर पड़े, पाँव के नीचे की पृथ्वी फट जाये, पृथ्वी माता अपनी गोद से चिमटा ले परन्तु पाप क्यों करूँ? जो होना है होगा, होकर रहेगा। इससे बचाव नहीं पाप करने वाले समझते हैं कि उनके पाप कर्मों को कोई नहीं देखता, चलो काम कर लेंगे, कोई देखेगा नहीं। मूर्ख को इतनी समझ नहीं कि जिस मन में खटका है वह अपना भूत आप ही पैदा कर लेता है। पापी डरता है। पाप डराता है। जब जाड़े के दिनों में नदी में नहाने जाते थे पानी में उतरते समय हाथ पाँव काँपते थे। साथी हँस कर कहा करते थे, "धर्म नहलावे पाप डरावे।" बात सच्ची थी। धर्म के काम से मन का मैल कटता है। पाप करने से मन में मैल आता है। जहाँ मैल होगा वहीं डर है वहाँ अन्धेरे ही में भूत का डर होता है। उजाले दिन में भूत कहाँ! वहाँ तो प्रकाश ही प्रकाश है। प्रत्येक वस्तु स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। जो जैसा है वैसा ही दिखलाई देता है। यह धर्म की महिमा है। परन्तु पाप क्या करता है? वह मन में बुरे भाव उत्पन्न करता है और उसे मलीन अपवित्र बनाता है।

मलीनता और अपवित्रता से भ्रम और भय उत्पन्न होते हैं यही करण है कि पापी अपनी छाया से डरता है। वह आप अपना शत्रु है। उसको और किसी मारने वाले का डर क्यों हो? उसका मन आप अपने साथ कटारी, बन्दूक और भाले रखता है। वहाँ आप ही दन-दन फैर हुआ करती है। ऐ पापियो! तुम्हारी अवस्था शोचनीय है। क्या तुम भी जीवित कहे जा सकते हो? नहीं! कदापि नहीं!! तुम तो कब के मर चुके हो। तुम्हारी गणना मुर्दों में है।

मेरे प्यारे पढ़ने वालो ! पाप न करो। यदि पाप हो गया है तो शीघ्र ही प्रायश्चित् कर लो। धर्म करो, सच बोलो, सच समझो, सच की राह चलो और तुम निडर हो जाओगे। साँच को आँच नहीं। सच को किस का भय है। यही सच्चा जप है। यही सच्चा तप है। यही सच्चा ज्ञान और यही सच्चा ध्यान है। यह पाप की जड़ काट देगा। कुछ दिनों साधन करके देखो और तुम वैसे ही अभय हो जाओगे जैसे मैं अन्धेरे में एक कल्पित वस्तु को डंडा लगा कर निडर बन गया था।

१. साँच बराबर तप नहीं, झूँट बराबर पाप।
जा के हृदय साँच है, ताके हृदय आप ॥ १ ॥

२. प्रेम प्रीत का चोलना, पहिर कबीरा नाच।
तन मन वा पर वारिये, जो कोई बोले साँच ॥ २ ॥

३. साईं आगे साँच हो, साईं साँच सुहाय।
भावे लम्बे केस कर, भावे घोट मुड़ाय ॥ ३ ॥

अभ्यासी के लिये आवश्यक उपदेश

(१) मांस का खाना एक दम निषिद्ध है। अण्डा, मछली भी मांस की परिभाषा में आ जाते हैं।

(२) नशा वाली वस्तुओं से सदैव बचना चाहिए। शराब, अफ़यून, गाँजा, चरस, भँग इत्यादि को भूलकर भी हाथ न लगाना चाहिये।

(३) प्रातःकाल उठकर अभ्यास करना आवश्यक है नहीं तो अभ्यास में उन्नति कभी न हो सकेगी।

(४) जोर से बात चीत करना, खिलखिला कर हँसना, वाद-विवाद (धार्मिक अथवा सामाजिक) करना हानिकारक है इससे बचते रहना चाहिए।

(५) शरीर और मन को फूल की तरह हलका रक्खा जाये।

(६) अधिकता के साथ पेट भर कर खाना अभ्यास में बाधक होता है।

(७) भोजन सूक्ष्म, सात्विक, हलका और साधारण हो।

(८) चिन्ता चित्त में कभी न आने पाये। संसारिक पदार्थों का प्रेम कम हो और उसे भाग्य के आधीन समझा जाये।

(९) नित्य ही प्रसन्न चित्त रहने का यत्न किया जाये। इस से अभ्यास में बहुत बड़ी सहायता मिलती है।

(१०) सत्संग नित्य हो।

(११) अभ्यास एक दिन के लिये भी न छूटे।

जो लोग इन बातों का ध्यान रक्खेंगे वह बहुत जल्द अभ्यास में उन्नति कर लेंगे। इसका आशय यह नहीं है कि कोई गृहस्थी के कारबार और संसारिक व्यवहार को छोड़ दे। कभी नहीं। सब कुछ करे परन्तु ऊपर के नियमों का पालन अवश्य करे। बस इतना ही कहना था।

नोट—यह नियम केवल हम अपने सत्संगियों के लिये लिखते हैं और लोगों को भी अधिकार है कि जिन नियमों को अपने लिये अच्छा समझें उनका पालन करें।

आनन्द धुन

मन मगन भया तब क्या चहिये? (टेक)

१. आसा बासा चित्त न उपजे, शान्ती सहित मौन गहिये।
२. राग विराग ईर्षा दुर्मति, सब को त्याग मुक्त रहिये।
३. देह गेह का नेह नहीं है, द्वन्द धार में क्यों बहिये?
४. सार-असार की समझ-बूझ तज, रूप का ठाट-बाट ठठिये?
५. नहिं कोइ शत्रु न मीत हमारा, भला बुरा किसको कहिये?
६. योग ज्ञान जप तप और संयम, रूप अग्नि में सब दहिये।

७. ब्रह्म लोक सत्लोक निवासा, किसको तज किसको लहिये ?
८. काल चक्र के टूट गये हैं, पर पुरजे टुकड़े पहिये।
९. राधास्वामी दया सुफल नर देही,
भव दुख सुख अब क्या सहिये !

शब्द (चितावनी)

बाबा ! अपनी ओर निहार (टेक)

१. औरन को क्या देखे बाबा ? निज जीवन को सुधार।
काम न आवे कोई तेरे, कुल कुटुम्ब परिवार ॥१॥
२. बहुत गई थोड़ी रही आयू, मन नहिं सोच विचार।
केहि विधि मैं समझाऊँ तुझको ! समझावत थक हार ॥२॥
३. कान सुने नहिं आँख न देखे, गहे न हाथ पसार।
दाँत का काम आँत लगी करने, बिन रस का आहार ॥३॥
४. आदर मान बड़ाई मिट गई, नहिं समाज सत्कार।
औरन की तो बात कहूँ क्या ? बिगड़े नित निज नार ॥४॥
५. बाबा ! तज दे आसा जगत् की, भज सत्गुरु कर्तार।
राधास्वामी की दया से, चल भव-जल के पार ॥५॥

छोटी-छोटी बातें

(१) धन से अच्छे काम भी किये जाते हैं और बुरे भी। जैसा मनुष्य का संस्कार होता है वैसा ही कर्म करता है।

(२) यदि हमारी सब इच्छायें जल्दी-जल्दी पूरी हुआ करें तो मन को सोचने-समझने का अवसर हाथ न आये। फिर न हम उन्नति कर सकेंगे न हमारे मन की गढ़त होगी।

(३) संसार में यदि दुख न होता तो उसका नाम संसार न होता। यह कुछ और ही कहा जाता। यहाँ सुख के पेट से दुख और दुख के पेट से सुख की उत्पत्ति होती है।

(४) एक मनुष्य अपनी अवस्था को बुरी और दूसरों की भली बताता है। सोचो तो सही इनमें कौन सच्चा और कौन झूठा है। सच्ची बात तो यह है कि दोनों सच्चे और दोनों झूठे हैं। अपनी-अपनी दृष्टि और अपनी-अपनी समझ-बूझ।

(५) कोई बादशाह होकर भी अपने आप को फ़क़ीर से बुरा समझता है। कोई फ़कीर होता हुआ भी अपने आप को बादशाह से अच्छा समझता है। इसका कारण केवल मनुष्य की अपनी दृष्टि है और कुछ नहीं। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

(६) हाथी चिंउटी पर पाँव रखता हुआ चला जाता है एक चिंउटी भी नहीं मरती और यदि एक चिंउटी हाथी की सूँड़ में घुस जाये तो वह तड़प कर मर जाता है।

(७) वास्तव में कोई किसी का मित्र नहीं है। जो औरों को मित्र बना लेता है उसका कारण उसके अपने मन में रहता है।

(८) इसी प्रकार कोई किसी का शत्रु नहीं है। जो सब को अपना शत्रु बनाया करता है उसका कारण उसके अपने मन में छुपा रहता है।

(९) हम आप अपने मित्र और हम अपने आप शत्रु हैं।

(१०) एक मनुष्य लाखों रुपये महीने में कमाता है परन्तु उसकी आवश्यकता पूरी नहीं होती। दूसरा पाँच रुपये महीने पाता है। उसका दिन सुख-चैन से कटता है। देखो एक संतुष्ट नहीं है और दूसरा थोड़े ही में प्रसन्न है। यह भी अपने मन की बात है।

(११) सुख-दुख, ज्ञान-अज्ञान, जीवन-मृत्यु यह सारे जोड़े (द्वन्द) हमारे ही अन्दर हैं। समय पाकर यही और जोड़े देने लगते हैं।

(१२) यह कभी न समझो कि एक शराबी एक दम बुरा और एक साधू एक दम अच्छा होगा। सम्भव है शराबी इस एक बात को छोड़कर और बातों की दृष्टि से उस साधू से कहीं अच्छा हो और यह भी हो सकता है कि साधू, साधू के रूप में महा दुष्ट हो।

(१३) बुराई-भलाई का संस्कार प्रत्येक मनुष्य में होता है। इससे कोई भी खाली नहीं है।

(१४) बन्धन की अवस्था किसी को अच्छा नहीं बनाती। यदि ऐसा होता तो जेलखाने के सारे कैदी अच्छे बन जाते।

(१५) धनवानों के लिये बहुधा उन्नति की राह बन्द हो जाती है परन्तु निर्धनों के लिये यह बराबर खुली हुई है। हाँ! आवश्यकता इस बात की है कि वह अवसर से लाभ उठायें।

(१६) धनवन्तरि एक हाथ में जोंक और दूसरे हाथ में हड़ लिये हुए उत्पन्न हुआ था। एक से शरीर का अन्तरी विकार दूर होता है और दूसरी शरीर के ऊपरी विकार को चूस कर बाहर निकाल देती है। जो शरीर को भीतर और बाहर से शुद्ध कर सकता है या करा सकता है वही सच्चा वैद्य है।

(१७) जिसके भीतर विकार नहीं है उसके शरीर का बाहरी हिस्सा भी शुद्ध और विकाररहित रहता है क्योंकि भीतर ही का विकार बाहर की ओर उबल पड़ता है।

(१८) यदि मन शुद्ध और पवित्र है तो शरीर को भी शुद्ध और पवित्र समझो नहीं तो इसके विरुद्ध जानो।

(१९) इस बात को मत देखो कि मनुष्य क्या खाता है या

अपने पेट को किस वस्तु से भरता है। यदि देखना है तो यह देखो कि वह मन, बचन और कर्म से कैसा है। इस कसौटी से मनुष्य को परखो।

(२०) जिसका मन शुद्ध और पवित्र है वह अपने संस्कार और मानसिक शक्ति से बुरे से बुरे आहार को अच्छा बना लेता है परन्तु जो मन का अपवित्र है उसको शुद्ध आहार भी अच्छा नहीं बना सकता।

(२१) कुछ दिन हुए एक जज साहिब मुझसे मिलने आये और ज्ञान ध्यान की बातें करने लगे। मैंने पूछा, "आपने गुरु भी किया है या नहीं।" उत्तर दिया गया 'नहीं'। मैंने कहा, कि आप अहंकारवादी हैं। जाइये, पहले गुरु से उपदेश लीजिये फिर मुझको ऐसी बातें सुनाइयेगा।"

(२२) जब हमने परमेश्र देखा ही नहीं तो वह गुरु कैसे हुआ! हम मनुष्य से उत्पन्न हुये। मनुष्य ही के साथ प्रेम रखते हैं। मनुष्य ही से शिक्षा पाते हैं। मनुष्य को समझो और सत् पुरुष का इष्ट मन में धारण करो। तब परमेश्वर की भी समझ आयेगी, नहीं तो जीवन पर्यन्त बहकते फिरोगे। चाहे और कुछ हो जाओ परन्तु ज्ञानी कभी न बनोगे। यह नियम है।

(२३) उपनिषद् कहती है— "सत्यकाम जाबालि को प्राकृतिक दृष्य के देखने से ब्रह्म का ज्ञान हुआ।" परन्तु उसने फिर भी गुरु से कहा, "आप मुझको चेला बनाइये तब ही यह ज्ञान पूर्ण होगा।" और ऐसा ही हुआ।

(२४) कबीर साहिब परम सन्त थे। स्वामी रामानन्द जी केवल एक साधारण साधू थे परन्तु फिर भी कबीर साहब ने उनको गुरु धारण किया। शुकदेव जी आजन्म महात्मा थे।

व्यास जी वेदों के जानने वाले तत्त्ववेत्ता थे। शुकदेव को पढ़ा लिखाकर राजा जनक का शिष्य बनने के लिये भेज दिया। वह शिष्य बने। नारद जी आदि ऋषि थे। विष्णु भगवान ने उपदेश दिया, "जाओ! अपने जैसे मनुष्य को गुरु धारण करो।"

(२५) जो अहँकार की उपासना करता है वह आपा पन्थी है। इसी अहँकार ने माया जाल को फैलाया। सूफियों के विचारानुसार पहिला आपा पन्थी "शैतान" हुआ है जो ईश्वर के दरबार से निकाल दिया गया। तुम इससे बचो नहीं तो तुम्हारी भी यही दशा होगी।

ज्ञान गुरु से लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भोंदू बह गए, राख जीव अभिमान॥

(२६) ब्रह्म की बात ब्रह्म नेष्ठी गुरु से सीख कर तब ज्ञानी बनने की लालसा करो। इससे पहिले यह शोभा नहीं देती। यदि तुम नहीं मानते तो तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। काम वह करो जिससे अहंकार दूर हो और यदि अहंकार इष्ट है तो आत्मज्ञानी कभी न बन सकोगे।

(२७) लोग कहते हैं गुरु धारण करने का समय लद गया, परन्तु इन्हें पता नही है कि वह समय अब आया है। आगे चलकर इसकी प्रणाली और भी पुष्ट हो जायगी। यदि बुद्धि-मान् हो तो गुरु का साथ पकड़ो और यदि अज्ञानी ही बना रहना है तो तुम्हें अधिकार है। जैसा चाहो वैसा करो।

(२८) इधर उधर मत बहको। शब्द अभ्यासी गुरु धारण करो। वह तुम्हें अभ्यास की युक्ति बताकर मालिक का दर्शन तुम्हारे ही घट में करा देगा। उसकी दया से साक्षात्कार होता

हुआ अनुभव भी बढ़ जायेगा और तुम सच्चे आत्मज्ञानी बन जाओगे।

(२६) गुरु हाड़ माँस और शरीर को नहीं कहते। गुरु नाम है इष्ट और आदर्श का। परम संत कबीर साहिब की बाणी है:—

"गुरु किया है देह को, सत्गुर चीन्हा नाँहि।
भवसागर के धार में, फिर-फिर गोता खाँहि॥
कबीर ते नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे तो ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥
गुरु हैं बड़े गोविन्द से, मन में देख विचार।
हरि सिरजे ते वार है, गुरु सिरजे ते पार॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किस के लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दिया लखाय॥"

शब्द (निज अवस्था)

गुरु दया हुई गुरु प्यारी बनी।
प्यारी बनी गुरु प्यारी बनी, मैं अपने गुरु की प्यारी बनी (टेक)
मैं बाली गुरु पितु और माता, गुरु का सहारा पाया।
गुरु की गोद खेलूँ दिन राती, दुख सुख सब बिसराया॥
प्यारी बनी॥१॥
यक रस भक्ति हृदय में छाई, चंचल मन भया निश्चल।
भाग उदय हुआ चिन्ता भागी, नहिं चित में रही हलचल॥
प्यारी बनी॥२॥
एक आस विश्वास गुरु का, दुर्मति अब न सतावे।
यह गति कोइ कोइ साधू जाने, गुरु भक्ती जब पावे॥
प्यारी बनी॥३॥

ईश ने सिरजा फाँस फँसाया, माया मोह लपटाया।
गुरु ने सिरजा फन्द कटाया, आवागवन नसाया॥
प्यारी बनी ॥४॥
धन नहिं माँगूँ मान न माँगूँ, ज्ञान ध्यान नहीं माँगूँ।
मन रहे चरन कमल गुरु राता, भक्ती रस में पागूँ॥
प्यारी बनी ॥५॥
दर्पन की सुन्दरी बन खेलूँ, किसी के हाथ न आऊँ।
काल जाल नहिं मोहि फँसावे, भक्ती भाव चित लाऊँ॥
प्यारी बनी ॥६॥
जाप मरा अजपा भी मर गया, चुप हुई अनहद बानी।
राधास्वामी ने खेल खेलाया, प्यारी हुई मस्तानी॥
प्यारी बनी ॥७॥

आदर्श (शब्द)

राधास्वामी धाम सिधार री।
सखी सुरत सयानी!

१. नहिं वहाँ काल कलेश न माया, नहिं सिर कर्म का भार री!
आनन्द की खानी ॥१॥
२. नहिं वहाँ तीन ताप का भय दुख, नहिं यम का अधिकार री!
वह पद निर्वानी ॥२॥
३. द्वन्द द्वैत पाखंड विवादा, नहिं सत असत विचार री!
जाय मन नहिं बानी ॥३॥
४. तीन त्रिलोकी काल रचाई, वह है इसके पार री!
अनुभव गति जानी ॥४॥
५. राधास्वामी आये दिया सँदेसा, सुरत का पाँव उभार री!
हो धुर स्थानी ॥५॥

आहार और शरीर पर उसका प्रभाव

जो मनुष्य जैसा भोजन करता है उसकी बुद्धि और मन भी वैसे ही बनते हैं क्योंकि इनकी बनावट में आहार का बहुत बड़ा अंश रहता है। और जातियों के विरुद्ध हिन्दुओं में प्राचीन समय से आहार पर बहुत कुछ विचार होता आया है। जो वस्तु लाभदायक पाई गई उसी के सेवन के लिये विशेष ध्यान दिलाया गया। बुरे आहार का दोष बतला कर उससे बचने के लिये समझाया गया। जो लोग उसको छोड़ नहीं सकते थे उन पर कड़ाई तो नहीं की गई, हाँ! उन्हें और लोगों की बस्तियों से अलग रहने का हुक्म दिया गया, जिसमें उनके बुरे प्रभाव और संस्कार से और सब लोग बचे रहें। आहार की जाँच पड़ताल का काम विशेषता के साथ धार्मिक मनुष्यों के जत्था ने किया है; क्योंकि पहिले ही से उनको अपने मन के गढ़ने और उस पर अधिकार पाने का ध्यान था। **चरक शास्त्र** जो हिन्दुओं के आयुर्वेद का प्रसिद्ध और सब से पुराना ग्रन्थ है खाने की प्रत्येक वस्तुओं का गुण बतलाता हुआ उनकी बहुत अच्छी व्याख्या करता है। इसमें लगभग उन सब वस्तुओं का वर्णन है जिसे पुराने समय में हिंदू खाते पीते थे। **सुश्रुत** और **वाग भट्ट** ने भी इस विषय में बहुत कुछ लिखा है परन्तु **चरक शास्त्र** की तरह पूर्ण निर्णय इन में नहीं पाया जाता।

यदि हम वैद्यक के ग्रन्थों को छोड़ दें और केवल मुख्य-मुख्य धार्मिक पुस्तकों को ही हाथ में लें तो उसमें भी कुछ संक्षेप के साथ इसका विवरण पाया जाता है। यहाँ तक कि **उपनिषद्** जैसे ज्ञान काण्ड के ग्रन्थ भी इससे खाली नहीं है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में जहाँ इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न करने का वर्णन है वहाँ भी विशेष प्रकार के आहार के सेवन करने की आज्ञा है। बौद्धों और जैनियों ने तो बाल की खाल निकालते हुये खाने पीने की प्रत्येक वस्तुओं की पूर्ण व्याख्या करदी है। इससे वैद्यों ने बहुत कुछ लाभ उठाया। रोगियों और बीमारों के खाने पीने के सामान जो आज कल बरते जाते हैं वह प्रायः वही हैं जिन्हें अनुभवी भिक्षुओं ने बतलाया था। वैष्णवों ने उनका अनुकरण किया। हमारा तो विश्वास है कि आज-कल वैष्णव धर्म्म के खान पान में जो वस्तुयें बरती जाती हैं वह सब इन्हीं बौद्धों और जैनियों के कथनानुसार हैं।

आहार से न केवल मन और बुद्धि की बनावट होती है किन्तु इसी से सारा शरीर बनता है और इसका प्रभाव मनुष्य के विचार, भाव और संस्कार पर भी पड़ता है। मनुष्य का स्वभाव जानने के लिये उसके नित्य के आहार को देखो और तुमको पता लग जायेगा कि वह कैसा है।

श्रीमद्भगवतगीता में भी इस विषय की संक्षेप परन्तु पूर्ण व्याख्या की गई है। यदि सबको छोड़कर गीता ही की व्याख्या पर ध्यान दिया जाये तो वह हमारे लिये बहुत ही उपयोगी और लाभदायक हो सकती है।

धार्मिक आचार्य्यों के मत के अनुसार आहार तीन प्रकार का होता है—सात्विक, राजसिक और तामसिक। तीनों ही के गुण भिन्न-भिन्न हैं। सत् सूक्ष्म है। तम् स्थूल है और रज में सूक्ष्म और स्थूल दोनों का मेल है। अब आओ इनको संक्षेप में व्याख्या कर दें जिसमें प्रत्येक मनुष्य इनके गुण को समझ सके।

(१) सात्विक या सतोगुणी आहारः—

चावल, दूध, घी, मक्खन, दाल, गेहूं, जौ, मूँग, मूठ, फल, मेवा, थोड़ी देर में पचने वाली तरकारी, मीठी और खट मीठी वस्तुयें जो चरपरी नहीं हैं।

इनके सेवन का फल यह है:—

मनुष्य बलवान, दयावान, वीर्य्यवान, विचारवान, बुद्धिमान, न्यायप्रिय, शान्त चित्त होता हुआ शारीरिक और मानसिक दृष्टि से आरोग्य रहता है। वह प्रेम की मूर्त्ति बना हुआ क्रोध से बचा रहता है। धर्म के तत्त्व और गूढ़ रहस्य की समझ आती है। पक्षपात और कट्टरपने से बचकर वह विवेक के साथ सोचने विचारने के योग्य होता है।

(२) राजसिक या रजोगुणी आहारः—

उर्द, चना, अरहर, मूली, बाजरा, ज्वार, गाजर, आलू, अरवी, पक्का आम, इमली, मधु, दही, मांस, मदिरा (शराब) मिर्च, लौंग, प्याज, गर्म दूध, कड़वी, खारी, बहुत गर्म और रूखी वस्तुयें इत्यादि।

इनके सेवन का फल यह है:—

काम अंग बढ़ता है। वीर्य्य के पतले और कम गाढ़े होने के कारण स्वप्नदोष हो जाया करता है। मन बुद्धि में अबलता आती है। चित्त चंचल रहता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, पक्षपात, हटधर्मी का अंग प्रबल होता है। दया क्षमा और न्याय का अभाव हो जाता है। द्विचिताई के कारण शान्ति नहीं आती। लड़ना झगड़ना मत मतान्तर के लिये वाद-विवाद करना इनका स्वभाव हो जाता है। धर्म का पालन करना महा कठिन होता है। आयु थोड़ी होती है और जो मनुष्य उनकी हाँ में हाँ नहीं मिलाता उसे वह मूर्ख और कुबुद्धि समझते हैं।

(३) तामसिक या तमोगुणी आहारः—

हर तरह का बासी खाना, सड़ी गली तरकारी, तेल, जूठा खाना, सड़ा हुआ नाज, मैला पानी, कई दिन का रक्खा हुआ बन्द खाना, बहुत खट्टा दही, सड़ा हुआ फल और मेवा, सड़ी मछली, सड़ा मांस, भंग, बिगड़ा हुआ दूध, मटर, मँहुआ, चना, मकई, साँवां, कोदों, टाँगुन और हर तरह का नाज जो बहुत देर में पचता है।

इनके सेवन का फल यह है:—

रुधिर बिगड़ता है। आँखें ख़राब होती हैं सूक्ष्म इन्द्रियों में दोष आ जाता है। सर में चक्कर और पीड़ा होती है। आये दिन सरदी से नाक बहती रहती है। मन मलीन, बुद्धि मलीन और शरीर मलीन रहता है। आयु कम होती है और यदि अधिक भी हुई तो मूढ़ता और पशुवत भाव के साथ जीता है। आलस्य, निद्रा, और अपाहिजपना उसका स्वभाव बन जाता है। आज का काम कल पर टालता रहता है। लज्जा और अपमान का ध्यान तक नहीं रहता। काम क्रोध में लम्पट होकर अपने आपको नीचे गिरा देता है।

यह तीनों प्रकार के आहार की संक्षेप व्याख्या है।

अब हमको धार्मिक दृष्टि से देखना है कि इनमें से कौन मनुष्य धार्मिक शिक्षा का अधिकारी है।

जो सतोगुणी है वह उत्तम अधिकारी है क्योंकि उसकी बुद्धि पर केवल अज्ञान का परदा पड़ा रहता है। वह सत्संग में जाकर शीघ्र ही सात्विक रंग ग्रहण कर लेगा और ज्ञान-ध्यान की बातों को जल्द समझ लेगा। उसके लिये केवल सत्संग बहुत है। यह ज्ञान का अधिकार रखता है।

जो रजोगुणी है वह मध्यम अधिकारी बन सकता है। उस

में अज्ञान और चंचलपने के दो दोष हैं। वह सत्संग में जाकर शान्ति के साथ चुपचाप न बैठ सकेगा। जब तक वह सात्विक भोजन के सेवन के साथ मन की गढ़त का विशेष ध्यान न रक्खेगा वह लाभ न उठा सकेगा। उसको स्वाध्याय के साथ किसी प्रकार का साधन भी करना चाहिये तब वह सत्संग के योग्य होगा। धीरे-धीरे यह भक्ति का अधिकारी हो सकता है और तब ज्ञान का।

जो तमोगुणी है वह कनिष्ठ अधिकारी हो सकता है परन्तु कठिनाई के साथ, क्योंकि उसमें तीन दोष हैं—मूढ़ता, चंचलपना और अज्ञान। यह सतसंग का तो किसी दशा में अधिकारी नहीं है। यह वहाँ जाते ही सो जायेगा और खर्राटे भरने लगेगा। ज्ञान की बातें इसकी समझ में कभी न आयेंगी क्योंकि मन पर अधिकार नहीं है और साथ ही वचन पर टिक नहीं सकता। सत्संग में इसका आना जाना व्यर्थ और निष्फल है। सब से पहिले उसका आहार सात्विक बनाया जाय तब सेवा टहल के काम में लगाकर धीरे-धीरे इसको स्वाध्याय के साथ मन के रोकने का साधन बताना चाहिये। तब यह कहीं सत्संग के योग्य होगा। फिर वह कर्म का अधिकारी हो सकता है, तब भक्ति का, और तब ज्ञान का।

काम की बातें

(१) प्रायः लोग गुरु की ख्याति तथा मान बड़ाई को देखकर शिष्य होते हैं। यह गुरु के शिष्य नहीं हैं। जहाँ इनकी दृष्टि में कोई बात प्रतिकूल आई तुरन्त भक्ति छोड़ देंगे। इनकी भक्ति विश्वास योग्य नहीं है।

मान बड़ाई देख कर, भक्ति करे संसार।
जब कुछ देखें हीनता, औगुन धरे गंवार॥
देखा-देखी भक्ति का, कबहु न लागे रंग।
बिपति परे पर छाँड़ सी, ज्यों काँचरी भुजंग॥

(२) बहुत से गुरु चेलों के मान सम्मान, बड़प्पन और ख्याति पर गर्व करते हैं और उनको बड़ा आदमी समझ कर अभिमान करते हैं। बहुत से गुरु ऐसे भी देखे जाते हैं जो परमार्थ में उन्नति कराने के बदले अपने चेलों को सांसारिक ऐश्वर्य की ओर आकर्षित करते हैं। यह अपने चेलों के चेले हैं। इन दोनों में से किसी का भी कल्याण नहीं होता। इनका आदर्श सांसारिक वस्तुओं की पूजा है। गुरु को यह ख्याल नहीं कि चेला परमार्थी हो बल्कि वहाँ तो यह लालसा रहती है कि नामी और प्रसिद्ध चेलों के सहारे और लोग भी फँसें और दुकानदारी चमक जाय। यहाँ पर अध्यात्म की उन्नति की आशा रखना बड़ी भारी भूल है।

(३) भक्ति त्याग चाहती है। बिना त्याग के भक्ति धन न आज तक किसी के हाथ आया और न भविष्य में आयेगा। जो व्यक्ति किसी वस्तु का मूल्य नहीं दे सकता वह उसको क्या प्राप्त कर सकेगा? बदले (मुआवजे) का नियम यहाँ पग पग पर अपना खेल दिखाता रहता है। मुआवजे की सैकड़ों ही सूरतें हैं। परमार्थ के लिये समय देना, मन देना, तन देना, सिर देना, सुख चैन का त्याग, मान सम्मान का त्याग आदि २ अनेक प्रकार के त्याग और बदले हैं। आदमी अभ्यास करता है और कहता है—"मुझे लाभ नहीं हुआ!" लाभ कहाँ से हो? क्या तुमने समय दिया? मन दिया? यदि समय और मन नहीं दिया तो फिर तुमको क्या मिले? जो मन देते हैं प्रियतम उन्हीं के हाथ आता है। जो समय देते हैं वही काल भगवान के चक्र

से छूटते हैं। सत्संग में जाते हुये जान सी निकलती है। अब सोचो ऐसे भाव वालों को लाभ भी हो तो क्या हो। यह तो चाहते हैं कि हर वस्तु मुफ्त में मिल जाये। रचना में कहीं भी इस प्रकार का व्यवहार दिखाई नहीं देता। अन्त में परिणाम यह होता है कि कोरे के कोरे रह जाते हैं। वाह्य विद्या के प्राप्त करने में पच्चीसों वर्ष का समय लगाना पड़ता है मगर यह चाहते हैं कि बिना समय दिये अन्तरीय विद्या हाथ आजाय। यह हो कैसे सकता है।

(४) दुनिया के लोग हिर्स (स्पर्द्धा) करने वाले होते हैं। हिर्स करने वाले परमार्थ के धन से वंचित रहते हैं। ये परमार्थ के अधिकारी कब हैं! संतों ने दया करके इनमें संस्कार का बीज डाल दिया है। समय आयेगा जब वह त्याग करने और मुआवजा देने के योग्य होंगे। उस समय कमाई करके आत्मिक धन प्राप्त कर लेंगे।

(५) बहुत लोगों को थोड़े दिनों में परिपूर्णता प्राप्त हो जाती है और बहुतों की आयु बीत जाती है, और कुछ नहीं होता। यहाँ पर भी वही नियम काम करता है। उन्होंने मन दिया और ये मन नहीं दे सके। बिना दिये किसी को मिले भी तो क्या मिले। सारी बात मन देने पर निर्भर है। हृदय के भाव एकाग्र होने पर रंग दिखाते हैं। कठोर हृदय और दुर्भावना वालों का तो मन ठिकाने नहीं है। उनमें मस्ती कैसे आये और वे परमार्थ की विशेषता को क्या समझें।

(६) दुनिया में जिसको देखिये वही गुरु बना हुआ है। चेला कोई भी नहीं, उपदेशक असंख्य हैं. मगर सच्चे अर्थों में उपदेश ग्राही बहुत ही कम हैं। चेलाई गुरुआई व्यवहार मात्र है। एक दुकानदारी बन गई है। नौकरी करने से तो थोड़ा सा ही रुपया मिलता है मगर चेला बना लेने पर थैलियाँ झुकाई

जाती हैं। यह रोजगार अच्छा या वह! आखों के अन्धे और गाँठ के पूरे उधर झुक भी रहे हैं मानों इन्होंने अपनी बुद्धि को वेच दिया है।

सिख साखा बहुते किया, सतगुरु किया न मीत।
चाले थे सत लोक को, अन्तहि अटका चीत॥

परम पुनीत सत्पुरुष (स्वामी जी) महाराज ने अपने जीवन का आदर्श प्रस्तुत करके जीवों को चिताया और बताया कि केवल हक हलाल की कमाई पर जीवन निर्वाह करने से परमार्थ की कमाई होती है। जीवों का धन लेने वाला गुरु अपने चेलों का चेला और उनका आश्रित रहता है। इनसे उद्धार कहाँ? वह तो स्वयं बुरी तरह बंधन में जकड़ा हुआ है और को क्या छुड़ायेगा।

बंधे को बन्धा मिला, बन्धन रहा बँधाय।
सेवा कर निरबन्ध की, पल में लेय छुड़ाय॥
बन्धे का क्या आसरा, बंधा जगत के फंद।
आप बंधा शिष्य भी बंधे, व्यापा जगत का द्वन्द्व॥
शिष्य को ऐसा चाहिये, गुरु को सर्वस देय।
गुरु को ऐसा चाहिए, शिष्य का कछू न लेय॥
धन मत दे तू बावरे, देना हो मन दे।
मन निज मन को अर्प कर, जन्म सुफल कर लेय॥
धन का देना सहज है, मन तो दिया न जाय।
मन का सारा खेल है, प्रेम भक्ति सत भाय॥

सोचने समझने की बातें

(१) पंडित ईश्वर चन्द विद्या सागर जो विधवा विवाह के लिये प्रसिद्ध हैं काउनसिल से घर आते हुये सोचने

लगे कि काउनसिल में कैसा कपड़ा पहिन कर जाना चाहिये, क्योंकि साधारण वस्त्र वालों की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। वह अभी सोच ही रहे थे कि सामने से एक लम्बा मुगल साधारण चाल से आता हुआ दिखाई दिया। संयोगवश उसी समय उसका नौकर आया और घबराहट के साथ कहने लगा, "खाँ साहिब! आपके घर में आग लग गई है जल्दी चलिये।" यह सुन कर भी मुगल ने अपनी चाल नहीं बदली और उसी साधारण चाल से चलता रहा। नौकर को आश्चर्य्य हुआ। उसने कहा, "खाँ साहिब! जल्दी पाँव उठाइये। घर जला जा रहा है।" मुगल ने क्रोध के साथ उत्तर दिया, 'मैं अपने बड़ों की चाल कैसे छोड़ूं! घर जले चाहे बचे। पुरानी चाल तो नहीं छोड़ी जायगी।" विद्या सागर को सोचने के लिये बात मिल गई। फिर उन्होंने अपना कपड़ा नहीं बदला। वही पुराने ढंग की लम्बी धोती कुरता और स्लीपर पहिन कर काउनसिल में जाते रहे और जीवन पर्यन्त यही दशा रही।

(२) हिन्दू जैसे पहिले थे वैसे ही देश के कुछ हिस्सों में अब भी हैं। जिन हिस्सों के लोगों ने अपना ढङ्ग बदला वह मर मिटे और जो पुरानी चाल और पुराने ढंग पर डटे रहे वह अब भी उसी आन-बान से हैं। जो लोग रात दिन गला फाड़-फाड़ कर औरों के ढङ्ग पर चलने का उपदेश सुनाते हैं और खान पान और सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन के लिये यत्न करते हैं वह इस साधारण बात पर विचार करें। जो हिन्दू रहना चाहें उनके लिये यह बात कही जाती है। जो एक दम से निकम्मे और पतित हैं उनसे हमको क्या लेना देना है। उनका मरना जीना हिन्दूपन की दृष्टि से बराबर है।

(३) हिन्दू धर्म न सुख की पूजा सिखाता है न दुख की। वह दोनों पर अधिकार पाने का उपदेश सुनाता है। यह उस

की शिक्षा का सारांश है।

(४) एक ग्रन्थकार पुस्तकें लिखता है। पढ़ने वाले आश्चर्य के साथ पूछते हैं. "क्या ऐसे शुभ गुणों वाले मनुष्य भी होते हैं ?" यह अज्ञानी नहीं समझते कि वह ग्रन्थकार आप ही वैसा मनुष्य है, नहीं तो ऐसे विचार उसके हृदय में कैसे आते ! जो जैसा है वह वैसा ही लिखता, सोचता, बोलता और करता है। उसके परखने की यही सच्ची कसौटी है।

(५) क्या संसार में कभी कोई मनुष्य ऐसा भी हुआ है जिसमें सारे शुभ गुण रहे हों ? उत्तर मिलता है, "हाँ ! श्रीकृष्ण को देखो पंडित हैं, कवि हैं, गाय चराने वाले ग्वाले और राज्य के शासन करने वाले हाकिम हैं। शूर, वीर, रणधीर और बाँके लड़ाके हैं। साथ ही योगी, ध्यानी और ज्ञानी भी हैं। भगवद्गीता को ध्यान के साथ पढ़ो। तब तुम्हें आप पता लग जायेगा कि कैसे ज्ञानी और तत्ववेत्ता थे।"

(६) "छी ! छी !! हिन्दू ईश्वर की पूजा पति के रूप में और पति भाव के साथ करते हैं।" यह आक्षेप बहुत से मूर्ख, अनसमझ और दूसरे धर्मावलम्बी करते हैं। वह इस बात को नहीं समझते कि पति और पत्नी ही का प्रेम संसार में सब से पूर्ण है। क्या हुआ यदि कोई इस भाव और इस निष्ठा से उसकी पूजा सेवा करता है ! इसमें संदेह नहीं कि माता का प्रेम भी बड़ा ही विचित्र है परन्तु वह बात इस में कहाँ !

सती जलन को नीकसी, तन धर एक विवेक।
तन मन सौंपा पीव को, अन्तर रही न रेख ॥
सती जलन को नीकसी, पिउ का सुमिर सनेह।
आस साँस की गम नहीं, बिसर गई सुध देह ॥

सती जलन को नीकसी, पिउ का सुमिर सोहाग।
देह तजत जिव नीकसा, धन धन ताके भाग ॥

जो उसे जिस रूप से पूजता है वह उसी रूप से उसको मिलता है। कोई उसको बाप, राजा और हाकिम इत्यादि भी तो कहते हैं। वह वास्तव में कुछ भी नहीं है और सब कुछ है।

(७) **याज्ञवल्क्य** जैसा ब्रह्म ऋषि होना सहज है परन्तु राजा **जनक** के समान राज ऋषि होना महा कठिन है। ऋषि हज़ारों लाखों हुये, होते हैं और होंगे परन्तु **जनक** इतिहास में एक ही हुआ है। सम्भव है उपनिषद् का राजा **अजात शत्रु** ऐसा ही रहा हो परन्तु हम निश्चय के साथ उसके विषय में कुछ नहीं कह सकते। यदि एक मनुष्य **जनक** जैसा संसार में उत्पन्न हो जाये तो जो काम हजारों ऋषियों के मिलकर करने से भी नहीं होता उसको ऐसा मनुष्य सुगमता से कर सकेगा।

(८) यह प्रकृति ही **पार्वती** माता है। औरों के लिये तो वह हजारों कपड़ों की तह में छुपी रहती है, परन्तु बच्चों के दूध पीने के लिये उसकी छाती खुल जाती है। तुम भी **पार्वती** माता और **भगवान शिव** के सच्चे पुत्र बन जाओ। फिर कोई परदा न रहेगा। यदि दुष्ट दुश्शासन की तरह **द्रौपदी** की चीर खींच खींच कर उसे नंगी करना चाहोगे तो तुम्हें सफलता कभी न प्राप्त होगी **कृष्ण** चीर को बढ़ाते ही जायेंगे। जैसे भीम द्रौपदी के पति ने दुश्शासन का पेट फाड़ कर उसका लहू पिया था वैसी ही तुम्हारी भी दशा होगी। **द्रौपदी** माया है।

युधिष्ठर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव पाँच तत्त्व उसके पति हैं क्यों नहीं भक्ति की राह पर चलते जिसमें प्रकृति का भेद तुम पर खुल जाये ! ढिटाई करने से किसी को क्या मिला है ? माया के अज्ञान का परदा केवल हल्की सी साड़ी है जो उसको छुपा रखती है परन्तु भक्ति के आते ही वह अपने भक्त बेटों से परदा नहीं करती। बेटों से किस माँ ने परदा किया है ? ऐसा समझो और तुम्हारा कल्याण होगा।

(६) क्या तुमने कभी शिव की अर्द्धाङ्गी मूर्ति देखी है ? यदि नहीं देखी तो अब उसका दर्शन अवश्य करना। एक ओर पार्वती की सुन्दर मूर्ति बनी हुई है जिसके गले में मोती और फूलों के हार पड़े हैं। दूसरी ओर शिवजी की मूर्ति है जिनके गले में मुण्डमाल और कानों से हड्डियों के कुण्डल लटक रहे हैं। साँप और काले नाग लिपटे हुए हैं। यह दोनों पुरुष और प्रकृति मिलकर ब्रह्म की मूर्ति का दृश्य दिखाते हैं। परन्तु किसके लिये ? जिनकी आँखें हैं। अमूर्त्तिमान को समझाने बुझाने के लिये इस प्रकार ब्रह्म अमूर्त्तिमान बनाया गया है।

(१०) ईश्वर का स्थान सब से ऊँचा है कैलास पर्वत की चोटी जो कंचनचंगा कहलाती है बहुत ऊँची है जिसने इसका ध्यान दिलाया वह कैसा बुद्धिमान् रहा होगा ! हिमालय पर्वत की चोटी मानों सब जगत् को देख रही है। इस शरीर में हिमालय तुम्हारा सिर है। कंचनचंगा ब्रह्मरेन्द्र है वहाँ चढ़ कर ईश्वर को ढूँढ़ो। यदि इसकी समझ अब तक न आई हो तो **पन्थ सन्देश** को एक बार अवश्य पढ़ो।

तुलसी या संसार में, सब सों मिलिये धाय।
ना जाने केहि भेष में, नारायण मिल जाय॥

———

कर्म भोग या मौज

(ले० परमसंत दयाल फकीरचन्द जी महाराज)

हुजूर महाराज बाबा सांवलेशाह (हुजूर श्री सावनसिंह व्यास वालों के)

जन्म दिवस के उत्सव पर

मुझे प्रिय बहिन लाजो रानी जो हुजूर साँवलेशाह की परम भक्तिनी और दयापात्र थी, हुजूर साँवलेशाह के जन्म दिन के शुभ अवसर पर अमृतसर में सत्संग के अवसर पर होशियारपुर आकर बुला ले गई। प्रत्येक व्यक्ति अपनी श्रद्धा और विश्वास के अनुसार अपने पूर्वजों की याद मनाता है। मुझ पर उस पवित्र विभूति (हुजूर साँवले शाह) ने बड़ा एहसान किया था। वह इतना बड़ा है कि इससे सारा संसार किसी समय लाभान्वित होगा। आज लोग मेरे इन शब्दों को न समझेंगे मगर चार या पाँच वर्ष के समय के पश्चात् भारत का विद्वत्त मंडल मेरे कथन का निर्णय करेगा और विवश हो जायगा कि इस लाइन पर आये।

वह एहसान क्या था ? मजहब और पंथों के जाल से (रिहाई) छुटकारे की शिक्षा का प्रचार करने के लिये प्रोत्साहन। मैं धार्मिक शिक्षा के प्रभाव से उस राम, परम तत्व, मालिक कुल या आधार की खोज के सिलसिले में मौज से हुजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी के चरण कंवल में गया था। वहाँ से मुझे राधास्वामी मत (संत मत) की शिक्षा मिली। मैंने काफी अभ्यास किया। जीवन प्रेम, श्रद्धा और भक्ति से बीता और उस परम तत्व को दाता दयाल के रूप में माना।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

शब्द और प्रकाश के प्रगट होने पर भी उस परम तत्व या आधार के दर्शन न हुये। स्पष्ट शब्दों में यों कहूं कि आत्मिक संतुष्टि या शान्ति न मिली। सन् १९१८ में बगदाद से लाहौर दाता दयाल के पास आया और नौ घन्टे तक लगातार स्वामी जी के निम्नलिखित शब्द से, जो मैं पढ़ा करता था, उनके चरणों पर सिर रखकर प्रार्थना करता रहा। आज अमृतसर के सत्संग पर मौज से वही शब्द निकला जो नीचे लिखा है।

गुरु मोहि अपना रूप दिखाओ। गुरु मोहि० ॥
यह तो रूप धरा तुम सरगुन, जीव उबार कराओ ॥१॥
रूप तुम्हारा अगम अपारा, सोई अब दरसाओ ॥२॥
देखूं रूप मगन होय बैठूं, अभय दान दिलवाओ ॥३॥
यह भी रूप पियारा मोको, इस ही से उसको समझाओ ॥४॥
बिन इस रूप काज नहिं होई, क्यों कर वाहि लखाओ ॥५॥
ताते महिमा भारी इसकी, पर वह भी लखवाओ ॥६॥
वह तो रूप सदा तुम धारो, या ते जीव जगाओ ॥७॥
यह भी भेद सुना मैं तुमसे, सुरत शब्द मारग नित गाओ ॥८॥
शब्द रूप जो रूप तुम्हारा, वा में भी अब सुरत पठाओ ॥९॥
डरता रहूं मौत और दुख से, निर्भय कर अब मोहि छुड़ाओ ॥१०॥
दीन दयाल जीव हितकारी, राधास्वामी काज बनाओ ॥११॥

इस पर आपने कहा कि कल प्रातःकाल तुमको निज स्वरूप के दर्शन कराऊंगा। दूसरे दिन प्रातः ही आपने समाधि से उठ कर मुझे पाँच पैसे और नारियल भेंट करते हुये नमस्कार किया और कहा मेरी आज्ञा मानो। बिना आज्ञा पालन किये हुये यह वस्तु तुमको प्राप्त न होगी। वह आज्ञा यह थी कि सत्संग कराओ और नाम दान दिया करो। साथ ही मुझे जगत गुरु की उपाधि (खिताब) देते हुये यह कहा

कि ऐ ! दीवाने और नादान फ़क़ीर ! तू यह न समझना कि तू किसी का बेड़ा पार करेगा बल्कि तुझको निज स्वरूप, मालिक या असली और सच्चे सतगुरु के दर्शन परम पुनीत राय सालिगराम साहब का स्वरूप सत्संगियों के रूप में करायेगा। मैंने दाता के नाम पर इस कार्य्य को आरम्भ किया। सत्संगियों के अनुभवों ने मेरा अज्ञान मिटा दिया। सन १९१८ ई० में जब बगदाद में बदअमनी या अशान्ति हुई तो उस समय मेरी आँख खुली। हम सब सत्संगी विभिन्न प्रकार की आपत्तियों में फंसे। जब तीन माह के पश्चात् हम इकट्ठे हुये तो उन सत्संगियों ने कहा कि मैं (फ़क़ीर) ने उनके अन्दर प्रगट हो कर भिन्न-भिन्न अवसरों पर उनकी सहायता की। और उनको अमुक-अमुक राय दी और वे अपनी-अपनी आपत्तियों से बच गये। मैं स्वयं भी एक मोर्चे में फंसा हुआ था कि दाता दयाल के स्वरूप ने प्रगट होकर मुझे हिदायत की कि जिससे हम सब, जो मोर्चे में घिरे हुये थे, बच गये। उस समय मुझको विश्वास हो गया कि असली और सच्चा सहायक प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर उसका अपना विश्वास है। इस पर मुझे यह भी विश्वास होगया कि वह परम तत्व दाता के रूप में इस संसार में जीवों के अज्ञान को दूर करने के लिये आया हुआ है। उसके बाद मैंने समस्त जीवन उस पवित्र अस्तित्व से प्रेम किया। यद्यपि उनका चोला अब भौतिक जगत में नहीं है, मगर उनका स्टेचू मेरे घर में है और अब भी प्रातः सांय जब कृतज्ञता का भाव उत्पन्न होता है उससे चिपट जाता हूँ।

दाता दयाल जीवन के अन्तिम आयु में गिडरवाहा पधारे जहाँ मैं स्टेशन मास्टर था। मैंने उनकी शारीरिक दशा को देख कर प्रार्थना की कि महाराज ! अब आपका यह चोला नहीं रहेगा, मुझे हुक्म दे जाओ कि किसको शीश नवाऊं ताकि

उनके द्वारा आपकी शिक्षा का प्रचार होता रहे। संसार के जीव अज्ञानी हैं। जिनके पर्दे नहीं खुले या अनुभव नहीं हुआ वह भटकते न रहें। आपने कहा मैं तुम्हारे सिवाय किसी अन्य व्यक्ति को बेहतर नहीं समझता। मैंने यह काम प्रारम्भ कर दिया। मगर सन् १९१८ ई० के पश्चात् बन्द किया हुआ था क्योंकि भेद के मिल जाने से सत्संग कराने और नाम दान देने की आवश्यकता प्रतीत न हुई। चूंकि मुझे सचाई से काम करना था और सचाई कड़वी होती है, काल और माया के मारे हुये मनुष्य अपने चित्त की वृत्ति थिर न होने के कारण सार भेद को समझने से वंचित होते हैं इसलिये मैं घबराया था। चूंकि मैं किसी से कुछ लेता नहीं था और सत्संगियों को अपने घर आने के कारण भोजन आदि का प्रबन्ध करना पड़ता था और आमदनी थोड़ी थी घर वाले विरोध करते थे, दुखी होकर सोचा कि हुजूर साँवलेशाह जी के पास जाऊं और जो कुछ वह आज्ञा दें उस पर चलूं। दाता दयाल और हुजूर साँवलेशाह का परस्पर प्रेम था। दाता दयाल महर्षि जी मुझे संकेत कर गये थे कि यदि कोई कष्ट प्रतीत हो तो उनसे (हुजूर साँवलेशाह) से राय ले लेना। मैं इसलिये सन् १९४२ ई० में उनके दरबार में हाजिर हुआ। उनके सत्संग, उनके शरीर से निकलने वाले परमाणु और उनके सत्संग के बचनों से जो मैंने सुने मुझे विश्वास होगया कि यह सार भेद के ज्ञाता हैं और सत्पुरुष हैं। फिर मैं उनसे एकान्त में मिला। यह बहिन लाजो वहां मौजूद थी। मैंने पन्द्रह मिनट निज रचित प्रार्थना कविता के रूप में सच्चे हृदय और भाव से की, जिसका भाव यह था कि मुझे इस काम अर्थात् सत्संग कराने से छुट्टी दिलाई जाय। इसको सुनकर हुजूर सांवलेशाह जी ने कहा कि फ़कीर तुम सच्चे हो और सच्चे ज्ञात होते हो। उन्होंने निर्भय होकर

काम करने की हिदायत की और सहायता करने का वचन दिया।

मुझे साहस हुआ और मैंने सत्संग का कार्य्य प्रारम्भ कर दिया। मेरे कार्य्य की सराहना हुजूर सांवलशाह ने की। उन्होंने मुझे लिखा था कि जो काम तुमने राधास्वामी मत का किया है वह हम डेरे वाले नहीं कर सके, क्योंकि मैं अपनी कुल पुस्तकें उनको भेज दिया करता था जैसे तशरीह हिदायत-नामा, बारहमासा आदि। राधास्वामी मत (सन्त मत) की शिक्षा के प्रचार में विभिन्न विभूतियों ने कार्य्य किया। समय समय की बात है। सत्पुरुष राधास्वामी दयाल की राय में केवल जीवित पूर्ण पुरुष का सत्संग और उसकी आज्ञा पालन यथेष्ठ है इसलिये मैं केवल गुरु मत का मानने वाला हूँ।

गुरु जो कहे सो हित कर मान।
गुरु जो कहे सो चित धर ध्यान॥

इस अमल या क्रिया से मनुष्य को अनुभव या ज्ञान हो जाता है और फिर यह संसार दुखदाई नहीं रहता है। जीवन शान्तमय हो जाता है। भ्रम, संशय और अज्ञान दूर हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में जीवन मुक्त अवस्था आ जाती है। बस यही रहस्य है। और यही कुछ मैंने संत मत में प्राप्त किया है। चूंकि जीवन की उलझनें जो अशान्ति का कारण होती हैं अनेक प्रकार की होती हैं इसलिये हर प्रकार की उलझन से निकलने की एक ही तदबीर नहीं होती, इसलिए संतों के मार्ग में पूर्ण पुरुष से हिदायत लेने की बड़ी आवश्यकता है। चूंकि उनकी विचार शक्ति बलवान होती है, उनका हित और मत मनुष्य को उलझन से निकाल कर शान्ति दिला देता है। इस ख्याल से मेरी समझ में सत् पुरुष राधास्वामी दयाल ने स्पष्ट शब्दों में सच कहा है कि गत समय का कोई महा पुरुष मनुष्य को काल और माया से नहीं

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

निकाल सकता। विश्वास के लिये प्रत्येक व्यक्ति की अपनी मनोकामना उस महा पुरुष के ध्यान से पूर्ण होती रहती है। जिस प्रकार अभी एक आदमी मेरे पास आया। उसने कहा कि उसकी बहिन ने मेरे (फकीर) के ऊपर विश्वास रख कर जो इच्छा की थी वह पूर्ण होगई। अतः वह मुझ पर विश्वास रखती है। अभी एक और आदमी आया और अपने साथ घी लाया। मेरे पूछने पर कि घी क्यों लाये हो कहा कि आपने मुझे चौवारा और गाय दी है। मैं बड़े अचम्भे में था कि मैंने तो कुछ नहीं दिया। कारण यह था कि उसने सतसंग में अपने मन में मुझे पूर्ण मान कर यह इच्छा की थी कि उसको यह वस्तुयें मिल जायें। वह मिल गईं। यह नियम है। चूंकि वह मुझे घी देने की हठ करता था और मैं लेना नहीं चाहता था वह घी एक बेवा को दे दिया। अब मैं पूछना चाहता हूँ कि जो साधु कहलाने वाले व्यक्ति इस प्रकार के विश्वासियों से चीजें ले लेते हैं उनका क्या परिणाम होगा ? क्या यह ४२० नहीं है ? इसलिये स्वामी जी ने कहा है—

शिष्य को ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय।
गुरु को ऐसा चाहिये, शिष्य का कुछ न लेय॥

मैं इस प्रकार का प्रोपोगण्डा कराने और आदर मान लेने को भारी अपराध समझता हूँ। अब मैं उन उलझनों का वर्णन करता हूँ जो इस शान्ति या आत्मिक-सन्तुष्टि या साक्षात्कार में रुकावट डालती हैं और जिनका इलाज हुजूर सांवले शाह व अन्य संत महात्मा बताते रहे हैं।

उलझनें

(१) विषय विकार का जीवन—जिस स्त्री और पुरुष में

का माँग अधिक होता है और वह मन से तथा शरीर से विषय-विकार का ध्यान या भोग अधिक करता रहता है इसमें मानसिक और शारीरिक अशान्ति का आना अनिवार्य है। मैंने इस विषय पर आवश्यकता से अधिक प्रकाश डाला है। इसके लिये मेरी 'सचाई' नामी पुस्तक का अध्ययन किया जाय। गीता रामायण व अन्य सन्तों की पुस्तकें स्पष्ट कहती हैं कि इन्द्रियों के भोग में जो अधिक लिप्त होगा वह दुखी होगा। अतः शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य्य की अत्यन्त आवश्यकता है। इससे मेरा अभिप्राय गृहस्थ के त्याग करने से नहीं है बल्कि समय से पहले विवाह नहीं होना चाहिए तथा इन्द्रियों की तृप्ति के लिये ब्रह्मचर्य्य को नष्ट नहीं करना चाहिए। जिनमें यह रोग आ जाता है उनको यह आत्मिक शान्ति बहुत देर से मिलती है। शायद जीवन में न भी मिले। यदि मैं १२ वर्ष बसरा बग़दाद में न रहता तो न मालुम मेरे जीवन की क्या दशा होती ? वहाँ मेरा शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य्य स्वयं हो गया। यही बातें हुजूर सांवले शाह जी सत्संगों में कहा करते थे। मेरे इस लेख को पढ़ कर कोई स्त्री पुरुष मनमत होकर गृहस्थ का त्याग न करे। अपनी परिस्थितियों को किसी पूर्ण पुरुष को बतला कर उससे सही राय ले लें। मैंने सिद्धान्त की बात वर्णन की है।

(२) **उलझन–सांसारिक कामनायें**—सांसारिक कामनाओं के कारण मनुष्य अशान्ति और बेचैनी का शिकार होता है। आशा रूपी डोरी की फाँसी हर एक आदमी के गले में पड़ी है। समस्त धर्मावलम्बी बेख्वाइशी या निष्कामता की रट लगाते हैं मगर यह अमली या व्यवहारिक जीवन के प्रतिकूल है। इसका उपाय है 'काम करो'। हुजूर सांवले शाहजी ने मुझे विशेष रूप से लिखा कि जीवन रूपी घोड़े की दो रकाबें हैं—

एक परमार्थ दूसरी स्वार्थ। स्वार्थ के लिये कर्म है और परमार्थ के लिये केवल पूर्ण पुरुष का सतसंग। शारीरिक स्वास्थ्य के बिना कर्म नहीं हो सकता। इसलिये गलत तपस्या के भ्रम में अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ना नहीं चाहिये।

हाँ, तुम्हारा अपना जीवन सादा हो। किफायतशारी (मितव्ययता) से काम लो। संतमत में जो डेरे, धाम बनाये जाते हैं, इसका यही अभिप्राय है कि जीवों को काम मिले। वह लोग धन्य हैं जो किसी को दान देने के बजाय बेकारों को काम देते हैं। मुझे दाता दयाल जी ने यह आज्ञा दी थी कि अपनी रोजी आप कमाओ। हाँ, अनुचित लालच अथवा चार सौ बीस करके कमाने से बचो। वर्तमान समय की परस्थितियों के अनुसार मैं कह देना चाहता हूँ कि बहुत अधिक ईमानदारी और सचाई व्यवहारिक मामलों में भी अशान्ति उत्पन्न कर देती है। इस विषय में प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने गुरु या पथ-प्रदर्शक से सलाह लेनी चाहिये।

एक बार एक स्त्री ने मुझ से प्रश्न किया कि मेरे बच्चों की कमाई अच्छी नहीं है मैं क्या करूँ। मैंने उत्तर दिया कि माई! घर का काम सुबह से शाम तक किया कर और उसके बदले में रोटी कपड़ा ले लिया कर। अन्य किसी वस्तु को या लड़कों की सम्पत्ति को अपना न समझ। उनकी नाजायज कमाई का तुम पर कोई प्रभाव न होगा। इसी सिद्धान्त पर यदि जमा करने की लालसा न हो तो कोई बोझ नहीं। दृष्टान्त के रूप में मैंने नियम बता दिया है अधिक व्याख्या से कुछ का कुछ समझे जाने का भय है। इसलिये अधिक अपने गुरु से ही परामर्श करना चाहिए।

(३) दुविधा—मनुष्य के अन्दर किसी बात के निर्णय करने में हिचकिचाहट का माद्दा पैदा होता रहता है और

मनुष्य में अशान्ति उत्पन्न कर देता है। उसका उपाय धर्म या सिद्धान्त पर स्थित रहना है। यह धर्म या सिद्धान्त परस्थितियों को दृष्टि में रख कर बनाये जाते हैं। इस में खानदानी रिवाज और देश के वातावरण को भी देखना पड़ता है। यदि मनुष्य स्वयं निर्णय न कर सके तो किसी बुजुर्ग की राय लेना आवश्यक है। संतों के मार्ग में धर्म वह है जो मनुष्य की तवज्जह (ध्यान) को सत्पुरुष के चरणों की ओर ले जाय और अधर्म वह है जो मनुष्य को उससे दूर कर दे। वह सत्पुरुष या दयाल शान्ति है। जिस जिस सिद्धान्त या नियम पर चलने से हम निर्भय, अचिन्त (चिन्ता रहित) बेगम (अशोक) बेफिक्र रह सकें, वह धर्म है। मैंने अपने जीवन में अत्यन्त ईमानदारी से काम लिया। दाता दयाल हँस कर कहा करते थे। कि 'ईमानदारी इष्टपद नहीं है।' मुझे इस रहस्य का पता नहीं लगता था। देर के पश्चात् ज्ञात हुआ कि इष्ट पद क्या है? इष्ट पद निर्भय, निर्वैर और अचिन्त होकर रहना है।

इसके अतिरिक्त मनुष्य की दुबिधा का मूल कारण मन की अबलता है। इसका उपाय विश्वास है, जहाँ भी अर्थात् जिस रूप में विश्वास बैठ जाय। मनुष्य का यह विश्वास ही ईश्वर और परमेश्वर या गुरु है। यही मनुष्य की असली सहायता करता है। 'विश्वासम् फलदायकम्' ऐसा शास्त्र कहते हैं और 'मन की गति कही न जाय' यह गुरुनानक का कथन है। इस ख्याल को या विश्वास को या इच्छा शक्ति को बढ़ाने के लिये सुमिरन, ध्यान और अजपा जाप आदि हैं। मगर यह साधन बिना पूर्ण पुरुष के सतसंग के नहीं करना चाहिये।

गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान।
गुरु बिन नाम हराम है, जा पूछो वेद पुरान॥

लोगों ने यह समझ रक्खा है कि केवल किसी महात्मा से नाम

ले लिया और बस। मैं जोरदार शब्दों में कहता हूँ कि यह बड़ी भारी गलती है। मैं विरोध की परवाह न करता हुआ कहता हूँ कि **पहिले पूर्ण पुरुष का सतसंग करो और सतसंग से अपनी आंतरिक वासनाओं में परिवर्तन करो, जो सुमरिन ध्यान का मूल है। यदि ऐसा न करोगे तो जिस प्रकार की वासनायें तुम्हारे मन में मौजूद हैं सुमिरन ध्यान करने से वही वासनायें (चाहे वह बुरी हैं या भली)** बढ़ जायेंगी और तुम अपनी वासनाओं के अनुसार अपनी दुनिया बना लोगे।

मैं कह रहा हूँ हेलामार, जीवन अपने का अनुभव सार।
जैसी वासना होगी अन्तर में, वैसी पकेगी मेरे यार॥
ताते लिया है सिर पर भार, प्रगटा हूँ जगमें कहने सार।
बिन सतसंग गुरु पूरे के, तुम होगे जगत में ख्वार॥

(१) श्री गुरु गोबिन्दसिंह को बचपन से ही अपने पूज्य पिता के साथ रहने से ही देश की परस्थिति के प्रभाव से हिन्दू जाति की रक्षा का ख्याल मिला था। आपने तप किया और उनकी अपनी ही इच्छा ने भजन, सुमिरन और ध्यान करने से शक्ति का रूप धर कर तलवार दी। वह जो कुछ कर गये सब को ज्ञात है।

(२) हुजूर श्री आनन्दस्वरूप साहब आगरा वाले, जैसा कि उनके एक सहपाठी ने कहा था, बचपन से ही स्टेट बनवाने और जनसाधरण को लाभ पहुँचाने का ख्याल था। राधास्वामी मत में आने से उनका सुमिरन ध्यान रंग लाया और वह जो नेक कार्य कर गये, हम सब उनके कृतज्ञ हैं।

(३) हुजूर दातादयाल महर्षि शिवब्रतलाल ने सार तत्व

और सचाई के वर्णन करने और धार्मिक पक्षपात को दूर करने के लिये कम से कम १५०० पुस्तकें लिखीं। उन्होंने यह ख्याल आर्य्य-समाज के गलत खण्डन के कारण से लिया था जैसा कि उनकी अपनी पुस्तकों से प्रकट होता है।

(४) श्री सांवले शाह ने धार्मिक पक्षपात को दूर करने का ख्याल लेकर डेरा बनाया। यह ख्याल उनको बाबा जैमलसिंह से मिला। उन्होंने मसलहत से राधास्वामी मत की बाणी में जहाँ हुक्का आदि को उल्लेख था काट दिया, ताकि धार्मिक घृणा न रहे। उनका एक पत्र हुजूर कृपालसिंह के नाम लिखा हुआ था जो मासिक पत्र 'दयाल' में प्रकाशित हुआ है। उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि संत मत कोई मजहब नहीं है बल्कि अध्यात्म (रूहानियत), जिसको मैं शान्ति और आनन्द कहता हूँ, का मार्ग है।

(५) ध्रुव ने राज न मिलने के कारण विष्णु भगवान से मिलने के लिये तप किया। दूसरे शब्दों में सुमिरन ध्यान किया उसकी अपनी ही आस ने विष्णु का रूप धारण करके उसको राजपदवी दिलाई।

(६) हुजूर कृपालसिंह, जो किसी समय सांवलेशाह के गुरु-मुख कहलाते थे, की आस थी कि उनकी जगह रूचाई की शिक्षा को फैलायेंगे। वहाँ अवसर न मिला तो उनकी अपनी आस ने ही उनके अन्दर हुजूर सांवलेशाह का रूप धर कर इस कार्य को प्रारम्भ कराया और उनकी आस ने ही महर्षि जी का रूप धर कर मेरे नाम उन्होंने संदेश दिया। जैसा ख्याल वैसा हाल।

७—मैंने बचपन से उस परम तत्व, मालिक कुल या राम के मिलने की लालसा की थी और जानना चाहता था कि सार तत्व क्या है। वह समझ गया।

परम तत्व मैं हूँ, मुझमें परम तत्व अयाँ है।
किसको ढूढूँ अब मैं, उससे खाली न कोई स्थान है ॥

सन् १९५७ ई० की घटनाओं से मेरे विचारों ने पलटा खाया और अब 'प्राणी मात्र को शान्ति मिले' (Peace to humanity) की आस रखकर सुमिरन ध्यान भजन करता रहता हूं।

---

(४) सांसारिक इच्छायें

हम अपने सम्बन्धियों और संतान को जब अपनी इच्छानुसार नहीं देखते तो अशान्त हो जाते हैं। इस विषय में मेरा अनुभव यह कहता है कि जिस प्रकार के ख्याल से संतान पैदा की गई उसी ख्याल का संस्कार अथवा माँ-बाप के हर प्रकार के प्रभाव सन्तान में आते हैं। इसका इलाज पैबन्द लगाना है अर्थात् उनको किसी पूर्ण पुरुष के सत्संग से लाभान्वित कराना चाहिये।

शठ सुधरहिं सत संगत पाई।

जिस तरह खट्टे को मिट्ठे का पैबन्द लगाने से यद्यपि वह मिट्ठा न बनेगा, मगर संतरा अवश्य बन जायगा, इसी प्रकार बहुत कुछ हद तक सुधार की आशा की जा सकती है।

इसलिये यह अनिवार्य है कि सब से पहिले मनुष्य की वासना, इच्छा या कामना को अनुकूल बनाया जाय। यह काल और माया का जगत है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म के भोगने के लिये विवश है। यदि कोई पूर्ण पुरुष मिल जाये तो अपने संकल्प से तथा हित से मनुष्य की इच्छाओं को पूर्ण कराता हुआ निष्कामता का धन देकर इस संसार के चक्र से छुटकारा करा देता है।

इस संकल्प की दुनिया अर्थात् मानसिक जगत से जब तक मनुष्य उपराम नहीं होता है सुरत शब्द योग की शिक्षा लाभ-प्रद नहीं हो सकती। यों तो प्रकृति माता का प्रबन्ध ऐसा है कि मनुष्य को अनुभव होता जाता है और वह अनुभव के बाद स्वयं उपरामता की अवस्था में आता रहता है। निरादर हो गया, धन सम्पति चली गई, सन्तान मर गई, शरीर नकारा होगया, आदि ऐसी घटनायें हैं जिनसे मनुष्य में उपरामता आ जाती है। यह शिक्षा भी ऐसे लोगों के लिये हैं:—

विषयों से जो होय उदासा।
परमारथ की जा मन आसा॥
धन संतान प्रीति नहीं जाके।
खोजत फिरे साध गुरु जाके॥ आदि आदि।

ऐसे पुरुषों के लिये आदेश है कि किसी साधू महात्मा से नाम लेकर कमाई करें। जब वह साधु या महात्मा स्वयं उस अन्तिम पद (विदेह गति) में जायेगा तो वह भी चला जायगा। साथ ही यह भी आदेश है कि जब-जब संत सतगुरु प्रगट हों उनकी संगत से लाभ उठाना आवश्यक है।

सन्त सत् गुरु वह पवित्र महत् पुरुष है जिसकी अपनी निजी कोई कामना नहीं होती और न किसी कामना से प्रभावित होता है। वह जीवन की समस्त परस्थितियों पर अधिकार के साथ स्थिर हो सकता है। ऐसे दुर्लभ पुरुष के सत्संग में उससे दृष्टि जोड़कर देखने और उसके बचनों के सुनते हुये मनुष्य की दशा बिना किसी परिश्रम के बदली जाती है। यह असली सुरत शब्द योग है।

जिस प्रकार वाह्य साधन से हुआ, इसी प्रकार अन्तरीय साधन से आनन्द, सरूर, अनुभव और निर्भ्रान्ति उत्पन्न होती रहती है। सत्संगों में रोचक और भयानक बातें

डेरे या सोसाइटी को स्थापित करने के लिये आवश्यक हैं मगर ऐसे सत्संगों से इन लोगों को जो अन्तरीय आनन्द या शान्ति चाहते हैं शान्ति नहीं मिल सकती। इस समय यह पंथ, जो कि मनुष्य की अन्तरीय शान्ति के लिये था, बाहर मुखी हो गया है। महात्मा लोग अपना मंडल बढ़ाने के लिये अनेक प्रकार का प्रोपोगंडा कराते हैं।

जीव अकाज देख दिल में दर्द समाई।
प्रगटा जग में मेरे मित्रो यह फकीर सौदाई॥
नाम नहीं किसी से मिलता नाम तुम्हारा जाती।
अपने जीवन के अनुभव से यह समझ है आई॥

संत कबीर का कथन है कि नाम उस समय मिलता है:—

पहिले दाता शिष भया, जिन तन मन अरपा शीश।
पीछे दाता गुरु भया, जिस नाम दिया बखशीश॥

जब मनुष्य शारीरिक और मानसिक भान बोध को छोड़ देता है अर्थात् इनका भान नहीं रहता तो जो वस्तु शेष रह जाती है वह नाम है।

तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा। सत नाम सत गुरु गति चीन्हा॥

प्रारम्भिक नाम का संस्कार जो कोई सतगुरु किसी को देता है वह यह संस्कार है कि तू उस परम तत्व या आधार का अंश है। तू उससे निकला है। उसमें समा जायगा। तू अपने आपको उस परम तत्व से जोड़ जो तेरा स्वरूप है।

मानवीय तवज्जह या जीवन शरीरधारी होने के कारण अनेक प्रकार के शारीरिक भान रखती है। इस ओर से तवज्जह हट जाने और फिर आगे मानसिक जगत में प्रवेश होकर उसको भी त्याग देने और फिर आगे आत्मिक अवस्था का आनन्द लेकर उसे भी छोड़ देने से मनुष्य अपने अस्तित्व को खोकर सर्व व्यापक तत्व में लय होकर अपनी सत्ता या व्यक्तित्व को

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

खो जाता है। मेरे अनुभव में यह जितनी श्रेणियाँ हैं जिनका वर्णन सुनकर मैं वर्षों शब्दों के जाल में भटकता रहा, जीवन के भान बोध हैं।

सहसदल कंवल	त्रिकुटी	सुन
अनेक प्रकार के संकल्प	केवल इष्ट का ख्याल	इष्ट के ख्याल में मस्ती
महासुन्न		
इष्ट के ख्याल में लय हो जाना		

यह मानसिक जगत के खेल हैं। यदि किसी को कोई बाहरी पूर्ण पुरुष मिल जाता है तो वह अपने सच्चे हित से उसको समझा देता है। फिर वह अन्तर में शब्द का साधन करके मन के चक्र से ऊपर आ सकता है। इस अवस्था का नाम सोहंग पुरुष है। इसी का नाम वेदान्त है। हुजूर-सांवलेशाह कहा करते थे—'अन्दर बढ़ो पर्दा खोलो।' यह पर्दा खुलना इस ज्ञान का प्राप्त करना है। वह कहा करते थे कि दसवें द्वार के आगे सतगुरु खड़ा है। वह सत् गुरु शब्द है न कि किसी पुरुष का आकार। वह शब्द ही तुमको आगे ले जायगा। वह यह भी कहा करते थे कि सूर्य्य चन्द्रमा और तारागणों के आगे सतगुरु मिलता है। सूर्य्य आदि का उत्पत्ति-कर्त्ता प्रकाश है और उन्हीं के कारण हमारे अन्दर उनके प्रभावों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के ख्यालात होते हैं। अतः सन्त मार्ग में इस काल और माया से निकलने के लिये शब्द योग है। यह हालत भी उनके भाग्य में आती है जिनको यह चन्द्र सूर्य्य ग्रह अनुकूल पड़ते हों, अर्थात् जिसके भाग्य में हो। इसलिये यह सुरत शब्द योग जन साधारण के लिये नहीं है।

कुछ करनी कुछ करम गति, कछुक पूर्वले लेख।
देखो भाग कबीर का, लख से भया अलेख॥

इस शब्द और प्रकाश की भी श्रेणियाँ हैं जिनको मेरी समझ में सत, अलख, और अगम भी कहते हैं। इससे आगे जब प्रकाश और शब्द गुम (लुप्त) हो जाते हैं तो एक अपरिमित जगत आ जाता है।

इतना ऊँचा जो कोई चढ़े।
रूप रंग रेखा से परे॥

इस अनुभव के पश्चात् यह समझ आई अथवा यह ज्ञान हुआ कि प्रत्येक मनुष्य एक चेतन्य शक्ति का बुलबुला या अंश है। इस अनुभव में रहने वाले पुरुष को दिव्य पुरुष कहते हैं।

न देह मेरी न मन मेरा, न रूह मेरी रही बाकी।
गर बाकी रहा कुछ है, तो कुदरत ही रही बाकी॥
किस को करूँ तलाश, और पूंछू भला किसे अब।
'मैं' मेरी एक फर्जी थी, उसकी 'नहीं' रही बाकी॥
दुनिया जैसे पहिले थी, वैसी की वैसी है।
भरम अज्ञान भासे थी, नहीं अब है बाकी॥

स्वामी जी की वाणी है:—

अरे मन देख कहाँ संसार। झूठे भरम हुआ बीमार॥
भाग जगा गुरु मत में आया। भरम गये गुरु ज्ञान को पाया॥
पाप ज्ञान छूटा संसारा। अब खेल समझ में करूँ जग कारा॥
बड़े भाग हम सतगुरु भेंटे। उनकी दया मिटे सब संशय॥
गुन गाऊँ निश दिन हर्षाई। मेरी बिगड़ी अब बन आई॥
कुछ दिन का मित्रो है संयोग। फिर फकीर आपे में गुम होगा॥

अब मस्ती आई, लिखा नहीं जाता।
फकीर अलमस्त रहे दिन राता॥

नोट—यह पूरा लेख 'सार भेद' नामक पुस्तक में अलग प्रकाशित किया गया है। मूल्य ।) है।

शिव के नियम

—'शिव' संसार के सारे प्राणियों के सुख और शान्ति के कल्याण-कारी ख्यालात प्रकाशित करता है।

—'शिव' सन्त, महात्माओं, ऋषियों और मुनियों की वाणी को सरल व सर्व साधारण की बोलचाल में प्रकट करता है।

—'शिव' महर्षि शिवब्रतलाल की अनमोल वाणी व साहित्य को प्रकाशित करता है और उसका प्रचार करता है।

—'शिव' में शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के उच्च विचारों को निष्पक्षता के साथ दिया जाता है। 'शिव' का उद्देश्य सन्तों की अमृत वाणी द्वारा देश की सभ्यता व शिष्टा- तथा सामाजिक, मानसिक, शारीरिक और आत्मिक स्थिति सुधार कराना तथा घर बैठे सत्संग का लाभ कराना है।

' शाका सम्वत् की हर मास की प्रथम तिथि को निकलता है।

ग्राहक महोदय पत्र लिखते समय **ग्राहक नम्बर और अपना पता साफ़ साफ़ लिखें** । उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना ज़रूरी है।

यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न मिले तो पहिले अपने डाकखाने में पूछताछ करें। उसके बाद यदि न मिले तो एक हफ्ते के भीतर ही दूसरी प्रति भेज दी जायगी।

के नमूने का अङ्क १) रु० भेजने पर ही भेजा जायगा।

का वार्षिक चन्दा ६) पेशगी है। ग्राहक पूरे सालभर के जाते हैं।

सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि के नाम आने चाहिये।

था सम्पादक सम्बन्धी पत्र सम्पादक 'शिव' लेखराज नगर गढ़ के नाम से करना चाहिये।

व्यवहार निम्नलिखित पते पर करें:—

रजिस्टर्ड नं० ए० १५

महर्षि शिवब्रतलाल कृत पुस्तकों की सूची

क़ानून ख्याल	१)
आदर्श भारतीय वीरांगनायें	१)
दृष्टान्त सन्देश	१)
कथा कल्पद्रुम	१)
गिरहदार मोती (उपन्यास)	१)
राजस्थान की ललित लल०	१)
सहज विचार	१)
राजभक्तिनी मीराबाई	॥)
उपदेशांजलि	॥=)
राजभक्त गोपीचंद व सुदामा	१)
आदर्श भारतीय महिलायें	॥।)
शब्द सार	॥।)
शाही पति परायण (उपन्यास)	१॥)
कर्म सुधार	॥)
हितोपदेश	॥)
आत्मिक प्रायमर उर्फ आत्मज्ञान प्रकाश	॥)
शाहीभूत (उपन्यास)	१)
इब्राहीम अधम	॥=)
परमार्थ सुधार	॥)
कथनांजलि	॥)
सप्त ऋषि वृतान्त	॥।)
जैन वृतान्त	॥=)
वीर पुरुष उर्दू	॥।)
शब्द गुंजार प्र० भाग उर्दू	१।)
कबीर योग उर्दू भाग १	१॥)
,, ,, ,, ,, २	१।)
महारामायण सम्पूर्ण	५)
महारामायण अनुभव खंड पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध व सिद्धि खंड सजिल्द	२)
नवजीवन सुधार	॥।)
राधास्वामी योग (प्र० भाग)	१)
राधास्वामी योग (द्वि० भाग)	१)
राधास्वामी योग (तृतीय भाग)	१)
पिंगल साखी	॥=)
शाही भिखारी उपन्यास	१॥)
प्रश्नोत्तरांजलि	॥=)

मिलने का पताः—

शिव साहित्य प्रकाशन मण्डल

पो० दयालनगर (अलीगढ़) उ० प्र०

मुद्रक—रामस्वरूप 'राघव' राघव प्रिंटिंग प्रेस ...